वाङ्मय पर विद्वज्जन

डॉ. हरवंशलाल ओबराय और स्वामी संवित् सुबोधगिरि की पुस्तकों पर टिप्पणियाँ

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम, भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139
08278680977

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :
श्री सुशील कुमार ताम्बी
प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
A/3 आर्य नगर
एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
मुरलीपुरा, जयपुर 302039
फोन : 0141-2233765
मो. : 09829547773

जागृति प्रकाशन
श्री कृष्णानन्द सागर
एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
दूरभाष : 0120-2538101
मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-21-4

प्रथम संस्करण : 2020 ई.

प्रतियां : 500

मूल्य : निःशुल्क

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

VANMAY PAR VIDDWAJJAN (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri

प्रकाशकीय

जब मैं नवम कक्षा में था मेरे क्लास टीचर ने कहा, चलो शाखा। मैं उन्हें बहुत मानता था। उनके साथ शाखा गया। उन्होंने पूछा, शाखा कैसी लगी? मैंने कहा, बहुत अच्छी। तब उन्होंने कहा, ओ.टी.सी. (संघ का एक माह का प्रशिक्षण-वर्ग) चलो। घर से पूज्य पिताजी, पूज्य बड़े चाचाजी की अनुमति ले उनके साथ ओ.टी.सी. चला गया। वहां मुझे बोध हुआ कि अपने देश भारत के पास सब कुछ है—यथा प्राकृतिक सम्पदा, बौद्धिक सम्पदा, सामरिक सम्पदा आदि सारी बातें जो किसी भी देश को वैभव के शिखर ले जाने वाली हो, हमारे पास है। पर हिन्दुओं में संगठन का अभाव और देश का नेतृत्व सही हाथों में नहीं होने के कारण भारत देश की और हिन्दुओं की दुर्दशा है। उसी समय से मेरा भाव बन गया कि मुझे संघ का कार्य करना है। प्रचारक बनना है और मैं पारिवारिक जीवन में नहीं जाऊंगा। मैट्रिक मैंने पैतृक स्थान पुरुलिया में की।

परिवार के अन्य सदस्यों की भांति उच्चतर शिक्षा हेतु कॉलेज और विश्वविद्यालय की पढ़ाई के लिए रांची (उस समय बिहार में, वर्तमान में झारखण्ड) गया। चूंकि मुझे पढ़ करके संघ-कार्य करना था तो घर में बिना बताए कामर्स से आर्ट विषय कर लिया ताकि शिक्षा का उपयोग प्रचारक जीवन में हो सके। और विषय भी वही रखे जो संघ-कार्य एवं जन सम्पर्क में उपयोगी होवें। भारत का नागरिक एवं संघ से जुड़ा होने से भारत देश, हिन्दू धर्म-दर्शन, संस्कृति हिन्दुओं के श्रद्धाबिन्दुओं, महापुरुषों, इतिहास आदि सब पर गौरव बुद्धि थी। पर इन सब पर कॉलेज और विश्वविद्यालयों के छात्रों एवं आचार्यों में हेय बुद्धि व हीनता का भाव पाया। इन सबके अनुसार भारत का न कोई अपना श्रेष्ठ धर्म-दर्शन-संस्कृति, इतिहास, महापुरुष, मानबिन्दु आदि हैं। अपने मुंह मियां मिट्ठू बनते हैं, जगद्गुरु बनते हैं। भारत श्रेष्ठ था तो हजार वर्ष गुलाम क्यों रहा? आज तो देश का कोई चरित्र नहीं है और आज भी गुलाम बने रहने योग्य है। मैं उन सबसे वाद-विवाद में उलझ जाता था, मन खिन्न, उदास हो जाता। तब लगा इस क्षेत्र में कार्य करना चाहिए क्योंकि जितना श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान, धर्म-दर्शन, संस्कृति, इतिहास, महापुरुष, परम्परायें, प्राकृतिक सम्पदा और प्राकृतिक सीमा इस भारत देश को प्राप्त हुई है

वह किसी अन्य देश को प्राप्त नहीं हुई—इस दृष्टि से मैंने अध्ययन और साहित्य संग्रह करना प्रारम्भ किया। सौभाग्य से इस संदर्भ में डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी से सम्पर्क हुआ। आप संघ के द्वितीय वर्ष शिक्षित विद्यार्थी परिषद् के संस्थापक सदस्य, 1960-61 में विद्यार्थी परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे। डॉ. महेशचन्द्र शर्माजी ने मुझे बताया कि उस समय विद्यार्थी परिषद् की देश में कोई विशेष पहचान नहीं थी। उस कार्यकाल में देश-भर में उनके प्रवास एवं भाषणों द्वारा अखिल विद्यार्थी परिषद् को राष्ट्रीय स्तर की पहचान मिली। आप बाबा साहिब आप्टे स्मारक समिति पूर्वाञ्चल के प्रमुख थे। आप संघ की विविध संस्थाओं से दायित्व के साथ आजीवन जुड़े रहे, इनमें उनका विशेष योगदान रहा है। भारत देश की सभी अध्यात्मिक संस्थाओं और प्रसिद्ध सभी संतों से जुड़े हुए थे और उनका आशीर्वाद प्राप्त था। गीता आश्रमों के संस्थापक परम पूज्य हरिहर महाराजजी (जोधपुर, जिनके आश्रम देश-विदेश में फैले हुए हैं) अपना वारिस बनाना चाहते थे। आप 'संस्कृति विहार' के संस्थापक थे। अपने जीवन काल में ये 106 देशों में प्रवचन के लिए बुलाये गये। उनके साथ श्रीलंका सहायक बनकर मैं भी गया था और भी कुछ देशों में साथ जाने का अवसर मिला पर जा नहीं सका, फिर वे दुर्घटनाग्रस्त हो गए। मैं डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी से जुड़ता चला गया। मेरे को लगा जो कार्य मैं करना चाहता हूं, तथ्यों सहित सारी सामग्री आपके पास है। तब मैंने सारा जीवन उनके चरणों में समर्पित कर दिया, केवल एक शर्त रखी कि आप मुझे प्रतिदिन एक-दो घण्टा लिखवायेंगे और फिर उसको प्रकाशित करेंगे। स्वयं डॉ. ओबरायजी की भी योजना 50 साल तक अध्ययन पश्चात् उसके विधिवत् लेखन, सम्पादन एवं प्रकाशन की थी। अतः उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया और एक बड़ी योजना लेखन और प्रकाशन की बनी। पर उनमें लिखने-लिखवाने की प्रवृत्ति कम थी। उनसे पढ़ना भी कठिन कार्य था। पर मुझे लगा यह एक राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य है। इनके पास जो सामग्री है वह सब जन-प्रकाश में अवश्य आना ही चाहिए! इससे हिन्दू धर्म-दर्शन, संस्कृति, इतिहास, महापुरुषों की प्रतिष्ठा भारत देश में ही नहीं विश्व के स्तर पर होगी। इसलिए शरीर की सभी आवश्यकताओं यथा भूख-प्यास, नींद, मान-अपमान, कॉलेज की कक्षायें आदि सब भुलाकर उनके पीछे लगा रहा। छात्रावास का अध्ययन काल एवं रात्रि अनुपस्थिति पर सख्त पाबन्दी थी। विशेष कारण उपस्थिति होने पर आवेदन पत्र द्वारा स्वीकृति लेनी पड़ती थी। पर सुपरिन्टैंडेंट शर्मा डॉ. ओबरायजी पर श्रद्धा रखते थे, मेरे विषय में जानते थे कि उनके पास ही उठता-बैठता कार्य करता है। अतः मेरे को कभी रोका-टोका नहीं। अन्य छात्रों के शिकायत करने पर उन्हें कहते वह डॉ. ओबराय के साथ महान् कार्य में लगा है। उसमें उसे बाधा मत पहुंचाओ। आप अपना सोचो

और अपने को ठीक रखो। वे स्वयं पेंटिंग कर रहे हैं और मुझे लिखवा रहे हैं, वे स्नानघर में नित्य कर्म से निवृत्त हो रहे हैं और अन्दर से बोल रहे हैं, मैं खड़ा-खड़ा लिख रहा हूं। वे व्यायाम कर रहे, सफाई कर रहे उसी अवस्था में खड़े-खड़े लिख रहा हूं। वे स्कूटर चला रहे हैं, मैं पीछे बैठा हूं—वे मुझे पढ़ाते हुए ले जा रहे हैं। बम्पर, गाड़ी घोड़े देखना और उनका कहा सुनना मेरा कार्य है। M.A. के दो पेपरों के बीच 8-9 दिन का गेप होता है। कार्ल मार्क्स ने जो धर्म की आलोचना की है, गीता का भक्ति योग आदि परीक्षा में आ रहा है, तब वे रात भर बैठकर लिखवाते थे। ट्रेन में यात्रा करते हुए, पानी के जहाज में यात्रा करते हुए मुझे लिखवा रहे हैं, पढ़ा रहे हैं। इस तरह से उनसे पढ़ा-लिखा हूं। काश उनकी समयानुसार सही ढंग से स्वयं लिखने और लिखवाने की प्रवृत्ति होती और योजनानुसार कार्य होता तो उनका साहित्य सर्वोच्च स्थान पर होता। मुझे प्रायः सभी राष्ट्रीय संतों एवं महापुरुषों की सत्संग एवं उनके साहित्य का अध्ययन का अवसर मिला हैं और मेरे पास स्वयं ग्रंथों का संग्रह है उस आधार पर कह रहा हूं। ये सब मैं इसलिये बता रहा हूं ताकि आप सब इस कार्य की महत्ता को समझ सकें।

इस प्रकार डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी के साथ मिलकर जो कार्य किया यानी उन्होंने मेरी जिज्ञासा पर जो पढ़ाया, लिखाया, समझाया और अकस्मात् दुर्घटनाग्रस्त होकर उनके दिवंगत हो जाने पर उसी लीक पर चलकर मैंने भी जो-जो कार्य किया वह सब प्रकाशित कर दिया। इन सबके परिप्रेक्ष्य में मुझे जो आशीर्वचन-पत्र, समीक्षायें प्राप्त हुई, ये सब जन-प्रकाश में आये ताकि इस साहित्य की महत्ता सब समझ सकें, इस दृष्टि से प्रकाशित कर रहा हूं। दूरभाष एवं सीधे भी मौखिक आशीर्वाद एवं शाबासी प्राप्त हुई और आज भी प्राप्त होती रहती है। 18 वर्ष की अवस्था में इस कार्य में लगा था, अभी वय के 64वें वर्ष में चल रहा हूं—46 वर्ष के सतत कार्य का यह परिणाम है। कार्य पूर्ण होने पर आज मैं संतोष का अनुभव कर रहा हूं। आशा है आप सभी का आशीर्वाद प्राप्त होगा। हर बार की तरह सांखला प्रिंटर्स का प्रिंटिंग कार्य में सौहार्दपूर्ण सहयोग और परम पूज्य गुरुदेव श्री सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद से पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
मो. 09413769139, 08278680977

राष्ट्रीय समस्या और समाधान

हम सेमेटिक परम्परा में विशेषकर इसलाम और ईसाइयत के अमानवीय, अराष्ट्रीय, अप्रजातांत्रिक, अधार्मिक, अआध्यात्मिक, अदार्शनिक, अवैज्ञानिक, अबौद्धिक, अतार्किक, असामाजिक, पर्यावरण विरोधी, नारी विरोधी, मानव स्वभाव के विरोधी स्वरूप को समझना नहीं चाहते। इन सब बातों की अनदेखी कर इनको हर स्थिति में अल्पसंख्यक का दर्जा देकर सब प्रकार की विशेष सुविधाएं, संरक्षण देकर देश को अलगाव, आतंक, आगजनी के हवाले कर दिया गया। और यह क्रम निरन्तर वृद्धि को पा रहा है। ये न धर्म हैं, न पंथ हैं। ये तो अपने-अपने उपनिवेश एवं बाजार स्थापित करने के अन्तरराष्ट्रीय राजनैतिक षड्यंत्र हैं। तभी तो जिन्ना स्पष्ट रूप से कह पाते हैं पाकिस्तान की नींव तो उसी दिन रखी गयी जब हिन्दू से पहला मुसलमान बना। स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं जब कोई हिन्दू से मुसलमान या ईसाई बनता है तब हमारे देश का एक बन्धु कम नहीं होता, हमारे राष्ट्र का एक शत्रु बढ़ जाता है।

हम अपने देश के मूल हिन्दू धर्म-दर्शन, संस्कृति, इतिहास, भाषा, परम्परा, महापुरुषों, मान बिन्दुओं, श्रद्धा बिन्दुओं कि जिनके कारण भारत भारत है, हिन्दुस्तान है—इनके ही धर्मनिरपेक्षता खतरे में पड़ने लगती है। भगवे की बू आने लगती है। पता नहीं इस देश का भगवाकरण नहीं तो क्या होगा। भारत का भारतीयकरण और हिन्दुस्तान का हिन्दूकरण नहीं हो तो क्या हो? हिन्दू में भारत में उत्पन्न सभी मत-पंथ आते हैं। इसको अस्वीकारने की प्रवृत्ति गांधीजी विशेषकर नेहरूजी के समय प्रारम्भ हुई जो आज तक जारी है।

हम पुनः भारतीयता को अपनाकर ही देश की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं और स्वाभिमान के साथ देश को खड़ा करके विश्व में अपनी योग्य भूमिका निभा सकते हैं।

पृष्ठ 312 मूल्य ₹ 250

भारतीय दर्शन परम्परा

दर्शन के क्षेत्र में भारत विश्व का शिरोमणि देश है।

भारतीय दर्शन की मूलभूत मान्यताएँ क्या हैं? भारतीय दर्शन की धाराएँ कितने प्रकार की हैं, भारतीय दर्शन के मूलभूत प्रश्न क्या हैं? भौतिकवाद क्या

है, उसकी परिणति क्या है? द्वैतवाद क्या है, उसकी परिणति क्या है? चेतनवाद क्या है, उसके कितने प्रकार हैं? उसका सबसे उत्कृष्ट, परिपूर्ण रूप शंकराचार्य के अद्वैत मत में मिलता है जिसकी ओर वैज्ञानिक जगत भी झुक रहा है। आकृष्ट हो रहा है। बौद्ध आधार शास्त्र क्या है, भारतीय नीति शास्त्र के दार्शनिक आधार क्या है? वेदान्त की विज्ञान चुनौती एवं भारतीय दर्शन द्वारा आधुनिक समस्याग्रस्त समाज का मार्गदर्शन आदि के सन्दर्भ में विचार किया गया है।

पृष्ठ 152 मूल्य ₹ 100

रामायण का हार्द

प्रभु श्रीरामचन्द्र का जन्म भारत के ही नहीं वरन् विश्व के सांस्कृतिक इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। राम हमारे देवविग्रह ही नहीं, अवतार विग्रह, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म परात्पर ही नहीं, हमारे राष्ट्रीय महापुरुष भी हैं जो पारिवारिक समरसता, सामाजिक समरसता, राष्ट्रीय एकात्मता एवं अन्तरराष्ट्रीय मैत्री व सौहार्द के आधार भी है। प्रभु राम भारत की विश्व में सांस्कृतिक दिग्विजय और भारत की अमरता के भी आधार हैं। इसलिए प्रभु राम के बिना भारत की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसलिए राममनोहर लोहिया स्वयं नास्तिक होते हुए भी राम, कृष्ण, शिव की चर्चा करते हैं। उन्होंने ही अन्तरराष्ट्रीय रामायण मेले की योजना प्रस्तुत की और उसको प्रारम्भ करवाया।

पृष्ठ 184 मूल्य ₹ 100

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण

भगवान् श्रीकृष्ण से अधिक व्यापक एवं सर्वतोमुखी व्यक्तित्व विश्व के इतिहास में सम्भवतः कोई नहीं हुआ होगा। लोक और परलोक, आदर्श एवं यथार्थ, कर्म एवं ज्ञान, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति, शक्ति और शील, लीला और मर्यादा, यज्ञ एवं युद्ध, वैभव एवं विरक्ति, राजनीति एवं ब्रह्मज्ञान—सभी में वे चरमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित अलौकिक महाविभूति हैं।

यानी भगवान् श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व इतना अनन्तमुखी है कि यह कहना कठिन है कि वे क्या नहीं थे। योग-योगेश्वर, ज्ञानदाता, सिद्ध, साधक, मित्र, सारथि, रक्षक, राष्ट्रनिर्माता, आदर्श कर्मयोगी, आदर्श प्रेमी, आदर्श शासक, सफल राजनीतिज्ञ, शूर शिरोमणि, मानवता के गौरव, लोकनायक, लोक

शिक्षक—वे सभी कुछ थे। पिछले 5000 वर्षों की गंभीर गवेषणा के पश्चात् भी अभी तक उनके बहुरंगी जीवन की अनेक-अनेक अज्ञात दिशायें खोजनी शेष हैं।

भगवान् कृष्ण का व्यक्तित्व इतना मोहक एवं हृदयस्पर्शी रहा है कि अनेक मुसलमान भक्त यथा रसखान, रहीम, बीबी चाँद, उस्मान, नजीर, मुर्तजा अली, ख्वाजा दिल मुहम्मद, रैहाना तैय्यब जी, अनेक सिख गुरुओं एवं अनेक पश्चिमी ईसाई भक्तों एवं संतों ने भी उन्हें एवं उनकी गीता को अलौकिक काव्य पुष्पांजलियां चढ़ाकर पूजा है।

पृष्ठ 112 मूल्य ₹ 100

गीता की विश्वव्यापी प्रतिष्ठा

गीता के वैचारिक जादू ने न केवल भारतीय मनीषा को वरन् विश्व मनीषा को अपने जन्म लग्न से आज तक आकृष्ट करता आ रहा है।

देश के राष्ट्रीय जागरण व राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम में गीता का अविस्मरणीय योगदान है। भारत के प्रायः सभी स्वातन्त्र्य सेनानियों का यह नित्य पठनीय ग्रंथ रहा है। अहिंसा व हिंसा उभय पथ के समर्थक राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम के पथिकों का प्रेरणास्रोत गीता रही है। गीता केवल राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम को ही प्रेरणा देने वाला ग्रंथ नहीं है, इसने अन्तरराष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम, (विशेषकर जर्मनी, जापान, इंडोनेशिया चैकोस्लोवाकिया, वियतनाम आदि) अन्तरराष्ट्रीय मैत्री भाव व विश्व-शान्ति को भी सम्बल प्रदान किया है। आज जाने-अनजाने में राष्ट्र एवं विश्व जिन समस्याओं से घिर गया है, उससे उबारने की क्षमता किसी ग्रन्थ में है तो वह भगवद्गीता में है, भगवान् कृष्ण में है। अमरीका का प्रसिद्ध दार्शनिक इमर्सन कहता है—जीव जगत्, धर्म एवं ईश्वर की कोई ऐसी समस्या नहीं है जिसका समाधान गीता के पास न हो। और सचमुच में गीता न केवल आध्यात्मिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक जगत् में वरन् जीवन के हर व्यावहारिक क्षेत्र में चाहे वह राजनीतिक जगत् हो प्रशासनिक जगत् हो व्यावसायिक जगत् हो, औद्योगिक जगत् हो, प्रबंधकीय जगत् हो, चिकित्सा जगत् हो, अपराध शमन जगत् हो, खेल जगत् हो, वैज्ञानिक जगत् हो, पर्यावरणीय जगत् हो, युद्ध क्षेत्र हो, शिक्षा जगत् हो इन सभी क्षेत्रों में गीता का सफल प्रयोग हो रहा है। इन सब क्षेत्रों की सफलता में गीता का विशिष्ट अवदान है—भारत के साथ-साथ विश्व-भर में।

पृष्ठ 120 मूल्य ₹ 80

गीता ज्ञान की कुंजी

श्रीमद्भगवद्गीता मानव इतिहास का वह अविनश्वर अध्यात्म संगीत है जो युगों से मानव को व्यामोह एवं विकृति से बचाकर सत्यं एवं ऋतं के कल्याण पथ की ओर आकर्षित करता रहा है। दुर्योधन एवं दुःशासन विकृति के प्रतीक हैं तथा अर्जुन व्यामोह के कारण उन विकृतजनों के सामने भी हथियार डाल रहा था। भगवान् श्री कृष्ण ने अपने गीता के संदेश द्वारा सज्जनों का व्यामोह दूर किया तथा विकृतजनों को उचित दण्ड देने का विधान किया। गीता का सशक्त संदेश है—राग-द्वेषमुक्त, न्यायपरक, निष्काम, निःस्वार्थ कर्तव्य पालन जो आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

इसमें गीता के भावों को हृदयंगम कर सकें इसके लिए संक्षेप में प्रश्नोत्तर शैली में सम्पूर्ण गीता के साथ-साथ 14 लेख इसमें समाविष्ट है।

पृष्ठ 136 मूल्य ₹ 120

गीता का पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष
(गीता का प्रथम एवं द्वितीय अध्याय)

गीता एक आध्यात्मिक ग्रन्थ के साथ-साथ ऐतिहासिक ग्रन्थ है। यह इस बात से सिद्ध होता है भगवद्गीता का प्रारम्भ भगवद् वाक्य या किसी माङ्गलिक वचन से न होकर पहली बार अर्जुन की जिज्ञासा से, दूसरी बार अंधे धृतराष्ट्र की जिज्ञासा से प्रारम्भ होता है। अर्जुन और धृतराष्ट्र, दोनों ही ऐतिहासिक पात्र हैं। और वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण और संजय भी ऐतिहासिक पात्र हैं। गीता इसलिये भी ऐतिहासिक ग्रन्थ है क्योंकि गीता महाभारत का अंशभूत प्रकरण है। अर्जुन धर्म-न्याय एवं राष्ट्र की रक्षा की दृष्टि से ही बड़े उत्साह के साथ युद्ध भूमि में उपस्थित होता है। क्योंकि इसके पूर्व दुष्ट कौरवों के अन्याय के प्रतिकार का अवसर बड़े भ्राता युधिष्ठिर महाराज के कारण मिला नहीं था। अर्जुन की भूमिका निर्णायक भी है। पर वह धर्म-राष्ट्र के शत्रुओं की प्रकृति के विषय में प्रत्यक्ष युद्ध भूमि में आकर संशयग्रस्त हो जाता है। अब चूंकि राष्ट्र और धर्म के शत्रु, और कोई नहीं स्वयं उसके अपने पारिवारिकजन ही हैं, आत्मीयजन, गुरुजन, पूज्यजन होने से अर्जुन को लगा मुझे अपने परिवार को ही जीवितावस्था में श्मशान में परिणत करना होगा। इससे वह घबरा जाता है, पारिवारिकजनों के प्रति स्वाभाविक स्नेह जागृत होने से मोहाविष्ट हो जाता है और पूज्य आचार्य द्रोण और भीष्म पितामह को अजेय जानकर भयभीत भी हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है धर्म एवं न्याय

के भाव से जो राष्ट्र रक्षा के लिये आया था, अब उसे अधर्म, पाप लगने लगा। समष्टि हित और सत्य के बजाय व्यक्तिगत रूप से राज्य भोग करने के लिये आया है ऐसा लगने लगा। अतः पाप और अन्याय का भागी बनेगा तथा कुल, जाति, गोत्र, देश, मानवता और सारे विश्व का सर्वनाश हो जायेगा। अतः इससे बचने के लिए वह क्षत्रियोचित धर्म से श्रेष्ठ ब्राह्मण धर्म, संन्यास को अपनाना चाहता है।

क्षत्रियोचित कर्तव्य से पलायन करने के भाव से युद्ध न करने के लिये अनेक तर्क गढ़ता है और इस महायुद्ध का क्या व्यापक दुष्परिणाम होगा इसका चित्र प्रस्तुत करता है। तथा धर्म का, न्याय का, उदारता का, ज्ञान का, मानवता का, विश्व रक्षा का एक बड़ा मनमोहक चित्र खींचता है और इस कारण वह युद्ध नहीं करेगा, कहकर शस्त्र त्याग कर रथ के पीछे बैठ जाता है। और वह भगवान् श्रीकृष्ण से इसका समर्थन चाहता है। अब तक भगवान् श्रीकृष्ण मौन थे। अब जोरदार डांट के साथ ही अपना मुंह खोलते हैं। इससे अर्जुन तिलमिला जाता है और समझ जाता है भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, इस महत्ता को समझते हुए ही उसने एक अक्षौहिणी सेना के स्थान पर निहत्था युद्ध न करने वाले भगवान् को स्वीकारा। अतः समझ जाता है भगवान् श्रीकृष्ण के सामने यह दुराव-छिपाव नहीं चलेगा। इसलिये अपने को शिष्य के रूप में समर्पित कर देता है—यह कहकर कि मेरा चित्त अपने क्षत्रियोचित कर्तव्य के विषय में पूर्ण रूप से मूढ़ हो गया है। मैं स्वयं निर्णय लेने में असमर्थ हूं। कृपया आप मुझे एक निश्चित कल्याणकारी मार्ग बतायें। साथ ही वर्तमान में अपने चित्त में जो दोष आ गया है, दुर्बलता आ गयी है वह भी सहजतया बता देता है कि वर्तमान स्थिति में मेरा युद्ध करने का भाव नहीं है। गीता के दूसरे अध्याय के 10वें श्लोक तक गीता की पृष्ठभूमि है, पूर्व पक्ष है। पूर्व पक्ष को समझे बिना उत्तर पक्ष को नहीं समझा जा सकता। गीता के दूसरे अध्याय के 11वें श्लोक से 18वें अध्याय के अन्त तक उत्तर पक्ष चलता है।

अर्जुन ने जो धर्म का चित्र खींचा है उसे पूर्णतया अस्वीकार करते हुए अब भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन ने जो प्रश्न उठाये हैं उन सबका उत्तर देते हुए धर्म का वास्तविक चित्र खींचते हैं। अर्जुन ने जो प्रश्न उठाये हैं प्रायः उन सभी का उत्तर द्वितीय अध्याय में दे दिया है। गीता के सारे मूल सिद्धान्त द्वितीय अध्याय में आ गये हैं, कुछ मनीषी मानते हैं गीता के द्वितीय के साथ तृतीय अध्याय तक गीता के सारे मूल सिद्धान्त आ गये हैं—आगे आने वाले अध्यायों में इसी का विस्तार से खुलासा किया है। अतः मैंने द्वितीय अध्याय तक विस्तार से चर्चा की है एवं तृतीय अध्याय का सार संक्षेप दे दिया है।

भगवान् श्रीकृष्ण का उद्देश्य अर्जुन को निष्काम भाव से स्वधर्म में स्थित करना है। इसलिये चाहे सांख्य योग का प्रतिपादन किया चाहे कर्मयोग का, चाहे

राजयोग का, चाहे भक्ति योग का, चाहे ज्ञान योग का, प्रत्येक अध्याय में भगवान् अर्जुन को इस दृष्टि से—तू निष्काम भाव से स्वधर्म में स्थित हो। भगवान् अर्जुन को न द्वेष भाव से युद्ध करने देंगे जैसा कि अर्जुन पहले अध्याय में तनिक द्वेष के साथ ही दोनों सेनाओं के मध्य में अपने रथ को स्थापित करने को कहता है, बाद में राग एवं भय से प्रेरित होकर युद्ध से पलायन करना चाहता है, पर भगवान् न द्वेष से युद्ध करने देंगे और न राग और भय से युद्ध से पलायन करने देंगे वरन् निष्काम भाव से स्वधर्म पालन करते हुए युद्ध की प्रेरणा देते हैं।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।। 8/7।।

'हे अर्जुन! तू सब कालों में मुझे स्मरण करता हुआ युद्ध कर।' यही ब्रह्म-चिन्तन और सांसारिक कर्तव्य का समन्वय है। यही ज्ञान और कर्म का समन्वय है, यही सांख्य और योग का समत्व है।

प्रथम अध्याय में अर्जुन का रुदन है, स्वधर्म से पलायन का भाव है। द्वितीय अध्याय में अर्जुन की शरणागति है। तब भगवान का उपदेश प्रारम्भ—इस अध्याय में आत्मा की अमरता, स्वधर्म की महिमा एवं कर्मयोग का बीज है। और आदर्श पुरुष के लक्षण हैं। तृतीय अध्याय में कर्मयोग का महत्त्व है। चतुर्थ में कर्म और ज्ञान से त्याग का समन्वय है। पांचवें में कर्म और ज्ञान (सांख्य और योग) दोनों की सिद्धावस्था में एकता एवं साधनावस्था में कर्मयोग की अधिक उपादेयता का वर्णन है।

गीता का मुख्य उद्देश्य अर्जुन को निष्काम कर्मयोग में लगाना है। उसके लिये भक्ति और ज्ञान आदर्श कर्मयोग की तैयारी हेतु आवश्यक हैं। अध्याय 6 से 9 तक अव्यक्त (निराकार) की उपासना ध्यान योग द्वारा तथा ज्ञानाश्रयी भक्ति के द्वारा दर्शायी गयी है। दशम अध्याय से द्वादश अध्याय तक व्यक्त की उपासना अर्थात् सगुण भक्ति का निरूपण है। दशम में सर्वत्र ईश्वर दर्शन, एकादश में एकत्र और द्वादश में भक्ति का पूर्ण परिपाक दर्शाया गया है। जिस निर्गुण की उपासना करते हैं, ध्यान द्वारा अथवा ज्ञान द्वारा उसी को सगुण रूप में सर्वत्र देखते हैं। उसी को विश्व रूप (विराट रूप) में एकत्र देखते हैं। दिव्य दृष्टि से निराकार को साकार देखकर भक्त कर्म किस प्रकार से करे यह द्वादश अध्याय में बताया गया। तैयारी कर्मयोग की एवं इसकी मनोभूमिका तैयार करने के लिये भक्तियोग उसे 7 से 12 अध्याय तक। 13 से 17 अध्याय तक ज्ञान योग की चर्चा विस्तार से है। आदर्श कर्मयोगी को तत्त्व से भटकना नहीं चाहिये इसलिये ज्ञान योग। 18वां अध्याय उपसंहार है, निष्कर्ष है। प्रयोजन की सिद्धि है कि अर्जुन का मोह-भय दूर हो गया है, अब वह कर्तव्य कर्म के लिये, स्वधर्म पालन के लिये, भगवान् श्रीकृष्ण का आदेश मानने के लिये तत्पर है, प्रस्तुत है।

भगवान् श्रीकृष्ण को धर्मद्रोह-राष्ट्रद्रोह किसी भी रूप में स्वीकार नहीं है चाहे अर्जुन के पारिवारिकजन दुर्योधनादि ही क्यों न हो, चाहे भीष्म पितामह और आचार्य द्रोण ही क्यों न हो, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के अपना मामा कंस क्यों न हो, चाहे जरासंध, नरकासुर या विदेशी कालयवन क्यों न हो, चाहे भगवान् श्रीकृष्ण के अपने पारिवारिकजन हों जिनके सहारे धर्मयुद्ध लड़ा, धर्म-न्याय की पुनः प्रतिष्ठा की, वे भी जब असुरपने को प्राप्त हो गये तो उन्होंने सम्पूर्ण यादववंश का ही नाश करवा दिया।

बौद्धों ने जब राष्ट्रद्रोह कर विदेशी शत्रुओं का साथ दिया, उन बौद्धों को आद्य शंकराचार्यजी ने क्षमा नहीं किया। भगवान् बुद्ध को भगवान् विष्णु के करुणावतार के रूप में स्वीकारा। पर बौद्धों को पुनः वैदिक धर्म, मातृ धर्म में समाविष्ट कर लिया और जो ज्यादा कट्टर थे, विदेश पलायन कर गये। पश्चिम के विद्वानों को आश्चर्य होता है अहिंसा के लिये विश्व में सबसे अधिक उपयुक्त भूमि भारत से ही बौद्ध धर्म का प्रायः लोप हो गया और विदेशों में वे फलते-फूलते रहे।

पृष्ठ 568 मूल्य ₹ 500

गीता का मनोविज्ञान

श्रीमद्भगवद्गीता अध्यात्म का एक महान् ग्रंथ माना जाता है। अध्यात्म की स्थापना जितने सुन्दर व मनोवैज्ञानिक ढंग से श्रीमद्भगवद्गीता में की गई है उतनी सम्भवतः किसी अन्य अध्यात्म ग्रंथ में नहीं मिलेगी। वैसे तो बिना मनोविज्ञान के आधार के अध्यात्म की भित्ति खड़ी भी नहीं हो सकती। किन्तु श्रीगीता वार्तालाप शैली का अध्यात्म ग्रंथ होने के कारण अर्जुन के मन के अथवा मानव मन के सभी मानसिक प्रश्न एवं मनोवैज्ञानिक संदेह सीधे ही ज्ञानस्वरूप-सर्वान्तर्यामी गुरु के सामने प्रस्तुत हो जाते हैं तथा उनका सर्वश्रेष्ठ समाधान भी प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं—अर्जुन शोक, मोह और भय को बिसराकर अपने कर्तव्यकर्म में स्थित होकर विश्व के महानतम युद्ध में विजयश्री-लाभकर संसार के श्रेष्ठतम योद्धा के रूप में अपने को स्थापित करता है। केवल अर्जुन ही नहीं, इतिहास के विभिन्न चरणों में विशेषकर अंग्रेजों के शासनकाल में स्वतंत्रता सेनानियों ने चाहे वे अहिंसा मार्गी हों या सहिंसा मार्गी हों सबने गीता को अपनाकर अपने परिवारजनों के मोह-शोक और ब्रिटिश हुकूमत के भय को भुलाकर स्वतंत्रता संग्राम में योगदान दिया और आवश्यकता पड़ने पर गीता का श्लोक गाते हुए हंसते-हंसते फांसी के फंदों पर झूल गए।

इस प्रकार जो भी गीता माता की शरण में जाता है, गीता माता उसके शोक, मोह, भय को हरकर उसे अपने कर्तव्यकर्म में स्थित कर देती है। इससे वह क्रमशः स्वतः ही पूर्णता की ओर बढ़ने लगता है और अन्त में अपने आत्मस्वरूप को पा लेता है और उसमें स्थित हो जाता है।

पृष्ठ 208 मूल्य ₹ 125

गीता में भक्ति योग

रागात्मक प्रवृत्ति का सर्वोच्च मूल्य पश्चिम के विचारकों ने सुन्दर को माना। सुन्दर वस्तु, व्यक्ति के प्रति राग-अनुराग स्वाभाविक है। सुन्दर मकान, सुन्दर दुकान, सुन्दर गाड़ी, सुन्दर आफिस, सुन्दर स्त्री, सुन्दर पुरुष, सुन्दर बच्चों के प्रति किसका मन आकृष्ट नहीं होता।

भारतीय विचारकों ने रागात्मक प्रवृत्ति का सर्वोच्च मूल्य भक्ति को माना। क्योंकि सबसे महान् के प्रति, सबसे पवित्र एवं पूर्ण के प्रति पूर्ण निःस्वार्थ अनुराग या प्रेम का नाम ही भक्ति है। सबसे पूर्ण और पवित्र कौन है? वह परमात्मा के अलावा कौन हो सकता है। नारदजी ने भक्ति सूत्र में लिखा है—'भक्ति परम प्रेम स्वरूपा' अर्थात् भक्ति परम प्रेम स्वरूप वाली है। बहिरंग सौन्दर्य का उपासक बाहर सौन्दर्य खोजते-खोजते मनुष्य जीवन को कुत्सित और मात्र काम का कीड़ा बनकर रह जाता है। उसका मन कामी, क्रोधी, लोभी, मोही यानी दूषित हो जाता है।

भारतीय विचारकों के अनुसार बहिरंग सौन्दर्य के साथ-साथ एक अन्तरंग सौन्दर्य भी है जो मनुष्य के मन को सौम्य, बुद्धि को पुष्ट, चित्त को सन्तुष्ट, अहम् को निर्मल और आत्मा को आनन्द सम्पुट बना देता है। वही बहिरंग सौन्दर्य का उपासक मन का मलीन, बुद्धि का दुष्ट-बेईमान, चित्त का सदैव असन्तुष्ट और अहम् भाव बड़ा प्रबल होता है।

बहिरंग सौन्दर्य प्रकृति या ईश्वर की कृपा से प्राप्त होता है। यानी इसमें अपना वश नहीं है। पर हम सब अपने अन्तरंग को सुन्दर बना सकते हैं। अपने भावों विचारों को सुन्दर बना सकते हैं।

भक्ति योग का सूत्र है—Feel for the perfect पूर्ण के लिए हर्ष-विषाद सुख-दुःख अनुभव करो। अमर वस्तु के वियोग में दुःख मानो और अमर वस्तु के संयोग में सुख मानो—

हरी मैं तो प्रेम दीवानी, मेरी दर्द न जान कोय।
पायोजी मैंने राम रतन धन पायो।।

हृदय से पाना भक्ति योग है। भक्ति योग हृदय नाम और भावनाशील लोगों के लिए हैं।

पृष्ठ 48 मूल्य ₹ 30

भक्तियोग
गीता का बारहवां अध्याय

भक्ति शब्द भज धातु से बना है जिसका अर्थ है, सेवा। शब्दकोश में और भी कई अर्थ दिये हैं जो इस प्रकार हैं—प्रेम, पूजा उपासना, श्रद्धा, सम्मान। जिसके प्रति प्रेम होगा, भक्ति होगी उसके प्रति सेवा का भाव भी होगा। अपने से बड़ों के प्रति पूज्य भाव से, श्रद्धा से, अपने समान के प्रति सख्य भाव से, छोटे के प्रति वात्सल्य भाव से सेवा करते हैं। पत्नी, सास-श्वसुर की सेवा पूज्य भाव से पति की सेवा पूज्य एवं सख्य भाव से व पुत्र-पुत्रियों की सेवा वात्सल्य भाव से करती है। ऐसे ही पति पत्नी की, मित्रों की सेवा सख्य भाव से, माता-पिता की सेवा पूज्य भाव से, पुत्र-पुत्रियों की सेवा वात्सल्य भाव से करता है। ऐसे ही भगवान के प्रति प्रेम है, भक्ति है तो उनकी सेवा पूज्य भाव से, श्रद्धा भाव से करते हैं। भगवान का प्रकट लीला काल है, तो उनकी प्रत्यक्ष सेवा करना जैसा कि हम हनुमानजी, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के जीवन में पाते हैं, इन्होंने प्रभु राम की भक्ति सेवा के रूप में की। यही बात हम पाण्डवों में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति पाते हैं। ये सब दुष्ट दलन में, सज्जन शक्ति की रक्षा में एवं ज्ञान की, न्याय की, धर्म की पुनः प्रतिष्ठा में सहायक बनते हैं। भगवान् ने विभूति योग में बताया जहाँ-जहाँ सज्जन शक्ति कार्य कर रही है, वहाँ-वहाँ मेरी ही विभूति कार्य कर रही है। अतः उनका सहयोगी बनना भगवान् का कार्य करना ही है। भगवान् ने ही अपने आपको जीव-जगत के रूप में प्रकट किया है। यह जीव और जगत् भगवान् का ही सगुण-साकार रूप है, भगवान् का विराट रूप है, भगवान् का वैभव है, विलास है। अतः अनासक्त भाव से जीव और जगत की निष्काम सेवा करना। इस प्रकार भगवान् का प्रत्यक्ष लीला काल है, प्रकट काल है, तब भगवान् की सेवा के साथ-साथ जीव-जगत की तथा जहाँ-जहाँ सज्जन शक्ति कार्यरत है उनकी सेवा करना उनका सहयोगी बनना। और जब प्रभु का प्रकट लीला काल नहीं है, तब अपने जीवन का विनियोग धर्म की प्रतिष्ठा, न्याय की प्रतिष्ठा और अधर्म के नाश में तथा ज्ञान,

ध्यान, भक्ति से निष्काम सेवा की स्थापना करना, देश में कार्यरत सज्जन शक्तियों का सहयोगी बनना, अपने जीवन को शुद्ध-निष्कलंक रखना आदि।

भक्ति वीरों का भूषण है। यह कायर निठल्ले, दुर्बल, भावुक लोगों के लिये नहीं है, जो थोड़ी-सी विपत्ति आते भाग खड़े होते हैं, अपनी भक्ति, निष्ठा की रक्षा नहीं कर सकते हैं। यह कर्मठ वीरों का भूषण है जो हर परिस्थिति में अपनी भक्ति निष्ठा, आदर्श पर दृढ़ रहते हैं, इसके लिये हर सम्भव बलिदान देने को तत्पर रहते हैं जैसा सिक्ख गुरुओं में, विप्लवी बन्धुओं में पाते हैं।

पृष्ठ 160 मूल्य ₹ 100

गीता में ज्ञान योग

मानव मन की तीन मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं—ज्ञानात्मक (congnition), रागात्मक (Affection) तथा संकल्पात्मक (conception)—इन्हें सरल शब्दों में knowing, feeling, willing कह सकते हैं। इन तीनों जीवनमूल्यों के अनुरूप ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्ग हैं—ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग। जीव सीमित चेतना वाला है। वह परम चैतन्य को प्राप्त करना चाहता है। व्यक्तिगत चेतना को परम चेतना तक ले जाने के लिए मनुष्य के पास चेतना के अतिरिक्त और कोई सीढ़ी नहीं है। मनुष्य के अन्दर जिज्ञासा है वह जानना चाहता है यदि उसकी ज्ञानात्मक प्रवृत्ति प्रबल है तो उसे चरम परम सत्य की प्राप्ति के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए। हम सब कुछ न कुछ जानते हैं तथा जानने की जिज्ञासा सदा लिए रहते हैं। किन्तु बहुत कुछ जानकर भी हम ज्ञानी नहीं कहलाते क्योंकि हमने चरम परम सत्य को नहीं जाना। यदि हमारी जानने की धुन तब तक संतुष्ट न होवे जब तक परम सत्य की उपलब्धि न हो जाए—तब हमारी ज्ञानात्मक प्रवृत्ति ही हमें ज्ञानयोग का साधक बना देगी। ज्ञानात्मक प्रवृत्ति सबमें है, किसी में प्रबल, किसी में सामान्य। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—जानना है तो पूर्ण को जानो। यही ज्ञानयोग है। ज्ञानयोग का सूत्र है know the perfect.

पृष्ठ 64 मूल्य ₹ 40

आत्मतत्त्व भारत की अमरता एवं स्वस्थ जीवन का राज

डॉ. राधाकृष्णन ने टी.एन.बी. कॉलेज भागलपुर के प्रांगण में कहा था—'दुनिया में इक्कीस तरह की सभ्यताएं आई और चली गईं। आज उनकी कब्रों पर सियार भौंक रहे हैं। केवल भारतीय संस्कृति पूर्व में थी, आज भी है और आने

वाले युगों में भी रहेगी, क्योंकि यह सनातन पर आधारित है।' आत्मा की अमरता पर आधारित है। हम शुद्ध, बुद्ध, मुक्त अजर-अमर अविनाशी आत्मा हैं। हमारा बाह्य कलेवर शरीर तो आने-जाने वाला है पर आत्मा शाश्वत है, सनातन है। देश-काल के थपेड़े उसे डिगा नहीं सकते। किसी भी प्रकार का प्रलोभन या मृत्यु का भय उसे अपने कर्तव्य से, अपने स्वरूप से च्युत नहीं कर सकते। भारतीय सभ्यता और संस्कृति आत्मा की अमरता पर आधारित होने के कारण चिरंजीवी बनी हुई है। विश्व की प्राचीन सभ्यताएं भौतिकता पर आधारित होने से नश्वर सिद्ध हुईं।

पृष्ठ 128 मूल्य ₹ 80

जीवन रहस्य और मृत्यु रहस्य

हम सब जी रहे हैं। किन्तु जीवन तत्त्व क्या है? इस पर विचार नहीं करते। जीवन को जीना और जीवन के रहस्य को समझना दो अलग-अलग बातें हैं। वैसे ही जैसे घर में रेडियो रखना और रेडियो का विज्ञान जानना। जीवन तत्त्व अमीबा से लेकर मनुष्य तक, सबमें क्रीड़ा कर रहा है। पर जीवन तत्त्व की लीला का रहस्य मानव ही समझ सकता है, अन्य कोई जीव नहीं। मनुष्यों में भी अधिकांश जीवन का बोझा या सांसों का भार तो ढो रहे हैं, जीवन तत्त्व को समझने का प्रयास नहीं करते।

सृष्टि में जीवन तत्त्व आया कहां से? इस विषय में भिन्न-भिन्न विज्ञान एवं दर्शन अधूरा उत्तर देने का प्रयास करते हैं।

वस्तुतः, जीवन तत्त्व जड़ से उत्पन्न नहीं हुआ। जीवन तत्त्व मृणमय न होकर चिन्मय (चेतना वाला) है, जीवन तत्त्व का अध्ययन हम तीन स्तरों में कर सकते हैं—

(क) जीवन का प्राथमिक बीज—अमीबा।

(ख) विकसित देह में आश्रित जीवन—जैसे पशु, पक्षी, मनुष्य।

(ग) देहातीत जीवन—अर्थात् देह के आश्रय से मुक्त, शाश्वत जीवन।

प्रश्न उठता है कि देह के आश्रय से मुक्त शाश्वत जीवन क्या सम्भव है? भारतीय परम्परा के अनुसार उत्तर है—हां। और इसका विशेष अध्ययन परामनोविज्ञान में हो रहा है और इसे सत्य सिद्ध कर रहा है।

वस्तुतः, जीवन, चेतना, आत्मा, परमात्मा ही सृष्टि का सनातन बीज है। यह उसकी लीला है कि वह कभी जीवाणुओं में खेलता है, कभी स्वेदज में, कभी

अंडज, जारज और पिण्डज यानी मन के भी कई स्तर हैं जिस पर अनेक शोधकार्य व विशेष अध्ययन हो रहे हैं—मनोविज्ञान-परामनोविज्ञान के अन्तर्गत।

जिस प्रकार जीवन एक रहस्य है उसी प्रकार मृत्यु उससे भी बड़ा रहस्य है। जो जीवन को थोड़ा-बहुत समझ पाते हैं वे भी मृत्यु के सामने चकरा जाते हैं। जीवन आजीविका से भिन्न है, उसी प्रकार मात्र हृदय गति का बंद होना या सांस का निकल जाना ही मृत्यु नहीं मृत्यु का लक्षण मात्र है।

हृदय अपने आप स्पन्दन नहीं करता। जीवनी शक्ति से स्पन्दन करता है और हृदय अपने आप, बंद नहीं होता। चेतन जीवन शक्ति के लोप से स्पन्दन बंद हो जाता है। इस चेतन जीवनी शक्ति के शरीर से विलग होने को ही मृत्यु कहा जा सकता है।

पृष्ठ 40 मूल्य ₹ 25

सृष्टि रहस्य, कर्म का सिद्धान्त तथा यज्ञ तत्त्व

यह विराट, अनन्त सृष्टि क्या है? इसका स्वरूप क्या है? इसका तत्त्व क्या है? इसका कोई सृष्टा है या नहीं आदि प्रश्न विज्ञान एवं दर्शन के अनादि प्रश्न हैं। इस संदर्भ में प्राचीन एवं अर्वाचीन (आधुनिक) विज्ञान की क्या खोजें है? और आज किस प्रकार आधुनिक विज्ञान के निष्कर्ष भारतीय दर्शन विशेषकर अद्वैत विज्ञान के निष्कर्ष के निकट पहुँच गया है, इसका स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है।

मनुष्य की योनि ही एकमात्र भोग योनि के साथ-साथ कर्म योनि है। पशु और देव योनि भोग योनि है, जिसमें पाप-पुण्य का क्षय मात्र करते हैं, नये कर्म अर्जन की क्षमता इनमें नहीं है। मनुष्य योनि में भोग के साथ-साथ नये कर्म अर्जित करते हैं। मानव देह में ही यह क्षमता कर्म के स्वरूप को समझकर कर्मों के पार जा सकता है, प्रकृति के पार जाकर अपने वास्तविक आत्मस्वरूप को, पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। हम सब कर्म बंधन से मुक्त होकर अपने आत्म-ब्रह्म ऐक्य की स्थिति को प्राप्त कर सकें इस दृष्टि से कर्म के सिद्धान्त इस कर्म के रहस्य का प्रतिपादन हुआ है।

भारतीय संस्कृति का एक पावनतम प्रतीक यज्ञ तत्त्व है। इसकी महिमा से सारा भारतीय वाङ्मय गूंज रहा है। यज्ञ अपने से बड़ी इकाई के प्रति लोक संग्रह के भाव से त्याग, समर्पण है। सारी सृष्टि यथा अपना शरीर जीवन, परिवार जीवन, समाज जीवन, राष्ट्र जीवन, विश्व जीवन का आधार यज्ञ ही है। यज्ञ एक वैज्ञानिक विधि है जिससे पर्यावरण शुद्ध होता है तथा वृष्टि होती है इसको स्पष्ट

किया गया है। वैदिक आदर्श देवताओं के निमित्त होम-हवन से है पर वैदान्तिक आदर्श सारे जीवन को यज्ञमय बनाना है इसको स्पष्ट किया गया है।

पृष्ठ 72 मूल्य ₹ 50

भारतीय दर्शन एवं विज्ञान का तुलनात्मक तत्त्वावलोचन

इस लेख में भारतीय दर्शन व पाश्चात्य विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। तत्त्व के प्रति भारतीय और पाश्चात्य अवधारणा में क्या मूलभूत अन्तर है, विकासवाद के सन्दर्भ में भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा में क्या विभेद हैं? अपरा विद्या, विज्ञान के प्रति भारतीय दृष्टि क्या है? आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की खोज क्या है? और उसके निष्कर्ष कैसे भारतीय दर्शन के, वेदान्त के निकट आते जा रहे हैं। जैसे विज्ञान आगे बढ़ रहा है, भारतीय धर्म-दर्शन-संस्कृति के निकट आता जा रहा है। आज वह वेदान्त की ड्योढ़ी पर, मन्दिर के गर्भ गृह के बाहर खड़ा है। जिस दिन विज्ञान Energy के स्वरूप को चेतन या चेतनामय मान लेगा, अनुभूति कर लेगा उस दिन विज्ञान की स्वतन्त्र सत्ता शेष नहीं बचेगी, वह पूर्व की भाँति दर्शन की एक शाखा में परिणत हो जायेगी। और आज सचमुच में बहुत से चोटी के वैज्ञानिक जैसे सर जेम्सजीन्स, एडिंगटन, आइंस्टाइन, श्रोडिंजर, प्लाक प्रभृति महान् वैज्ञानिक पदार्थ से परे किसी चैतन्य सत्ता में विश्वास करने लगे हैं। तभी तो प्रथम अणु विस्फोट के समय ओपेनहाइमर को भगवद्गीता का श्लोक याद आता है। श्रोडिंजर एवं एडिंगटन अपनी अनेक पुस्तकों में सांख्य, वेदान्त एवं योगदर्शन का हवाला देते हैं। वर्तमान समय में केपरॉ अपनी अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों में विज्ञान के निष्कर्षों के साथ वेदान्त का साम्य दर्शाते हुए योग दर्शन, वेदान्त की अनुशंसा करते हैं। स्पष्ट है जैसे-जैसे विज्ञान आगे बढ़ रहा है भारतीय दर्शन की सत्यता प्रकट होती जा रही है।

पृष्ठ 80 मूल्य ₹ 60

भारतीय संस्कृति पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है, भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। पश्चिमी राष्ट्र राजनीतिक इकाई से बनता है। भारत में राजनैतिक एकता भले ही अनेक बार खंडित होती रही है पर सांस्कृतिक एकता सदैव अभेद्य रही है।

भाषाएँ बांटती है, संस्कृति जोड़ती है। राजनीति तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। वर्ण, आश्रम, जाति-उपजाति, प्रदेश, वेश-भूषा, आर्थिक स्तर आदि को संस्कृति ने जोड़ रखा है। भारतीय समाज—नगरवासी, ग्रामवासी और वनवासी तीन स्तरों पर विकसित हुआ है। किन्तु, सभी स्तरों पर एक ही महान् संस्कृति का स्वर्णिम सूत्र पूरे समाज को एकात्मता में बांधने में सक्षम सिद्ध हुआ है। अतः राष्ट्र की एकता का स्वर्णिम-सूत्र संस्कृति ही है। यह सूत्र टूटते ही भारत खण्ड-खण्ड हो जाएगा। जो संस्कृति अपने देश में समन्वय का स्वर्णिम सूत्र है, वही संस्कृति भारत के सांस्कृतिक दिग्विजय एवं अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों की प्राणधारा है।

आज विज्ञान तीन कारणों से भारतीय दर्शन की ओर झुक रहा है, एक तो सृष्टि की व्याख्या में अपने को असमर्थ पाकर। दूसरा, संस्कृत भाषा से जैसे-जैसे पश्चिम का परिचय बढ़ा तब यह जाना कि उन्होंने जो खोजें की है वह एकदम से नई नहीं है, बहुत पहले से ही वैदिक भारतीय परम्परा में सूत्र रूप से सूक्ष्म रूप में उपलब्ध है। तीसरा, विज्ञान का दुरुपयोग न हो इसके लिए नैतिक मार्गदर्शन चाहिए वह केवल भारत ही, भारतीय दर्शन ही दे सकता है, बाइबिल नहीं। बाइबिल से पिण्ड छुड़ाकर ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की जय यात्रा सम्भव हो सकी है।

इसमें एक लेख 'आधुनिक युग में उपनिषदों का प्रसार यूरोप में' कैसे हुआ जिसने यूरोपीय वैचारिक जगत् में तहलका मचा दिया।

इसमें अन्तिम लेख 'मानव जीवन की सार्थकता' है। इसमें बताया गया है कि एकमात्र मानव शरीर से ही आगे की, पूर्णता की, दिव्यता की यात्रा कर जीवन काल में ही आत्मलाभ, प्रभुलाभ, आत्म-ब्रह्म ऐक्य की अनुभूति में स्थित हो सकते हैं।

पृष्ठ 112 मूल्य ₹ 80

मार्क्स के धर्मविषयक विचार की समीक्षा

मार्क्स ने यूरोप में पोप की पाप एवं पाखण्ड लीला का बड़ा घृणित रूप देखा और इतिहास से जाना। इसलिये उसे ईसाई अंधविश्वासों के प्रति घृणा हो गई। इसलिये एक समाज सुधारक के नाते उसे उसका विरोध करना पड़ा वह उचित ही था। उसे वेद, गीता और उपनिषदों के विश्वकल्याणकारी धर्म का ज्ञान ही नहीं था। उसे केवल पंथों का ही परिचय प्राप्त हुआ। धर्म जैसे विश्वव्यापी लोकतान्त्रिक एवं तर्कसम्मत कर्तव्य विधान का परिचय प्राप्त नहीं हुआ। अतः कार्लमार्क्स ने जो धर्म की आलोचना की, समीक्षा की वह सेमिटिक परम्परा पर विशेषकर इसलाम

एवं ईसाइयत पर लागू है, सनातन हिन्दू धर्म, वैदिक धर्म, आर्य धर्म पर नहीं। इस पुस्तक में हिन्दू धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्रकट किया गया है।

पृष्ठ 32 मूल्य ₹ 20

भारतीय परम्परा में काम पुरुषार्थ

सेमिटिक परम्परा और पाश्चात्य आधुनिक चिंतन में जो 'काम तत्त्व' का अध्ययन हुआ है वह एकांगिता को लिए हुए आधा-अधूरा है, विकृति को लिए हुए है। अतः वह न सम्यक् रूप से काम उपभोग और न सम्यक् रूप से काम उपरामता में ले जाने में सक्षम है। इसका दुष्परिणाम पूरा पाश्चात्य जगत् भोग रहा है जिसका प्रभाव भारत में भी पड़ रहा है। 'काम तत्त्व' का सम्यक् एवं सर्वाङ्गीण अध्ययन भारतीय परम्परा में हो सका है जिससे हम काम के सम्यक् उपभोग और सम्यक् उपरामता में समर्थ सिद्ध हो परम पुरुषार्थ मोक्ष के अधिकारी बन देश-समाज और पूरे विश्व की सर्वोच्च भलाई में अपने जीवन का विनियोग कर उस की महक, जीवन की मधुर-मधुर मुसकान, सर्वत्र बिखेर सके हैं।

पृष्ठ 48 मूल्य ₹ 40

भारतीय परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय

मनुष्य का समग्रता से अध्ययन भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में ही सम्भव हुआ। पश्चिम में शरीर, मन-बुद्धि (Mind & Matter) से परे आत्मा का विचार प्रायः नहीं मिलता। पर वैदिक सनातन हिन्दू धर्म ने शरीर, मन-बुद्धि के साथ आत्मा का विचार किया। इसलिये आहार, निद्रा, भय, मैथुन, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि पशु प्रवृत्तियों के साथ-साथ देवी वृत्तियां यथा धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध का भाव भी पाया जाता है। अर्थात् पशु-प्रवृत्तियों के साथ-साथ इससे ऊपर उठने का भाव भी हमारे अन्दर विद्यमान है। इसलिये हमने शरीर, मन-बुद्धि के साथ आत्मा का विचार किया।

आत्मा को ही परम सत्य माना। शरीर और मन को अस्वीकारा नहीं पर उसे परम सत्य नहीं माना। अतः परम महत्त्व भी नहीं दिया। इसके आधार में आत्मा को रखा। शरीर और मन को यथा योग्य स्थान दिया। अतः अर्थ और काम की कभी उपेक्षा नहीं की। नहीं तो देश धन-वैभव की दृष्टि से सोने की चिड़िया नहीं होता। धन-वैभव से आकृष्ट होकर ही एक के बाद एक विदेशी आक्रान्ता यथा शक, हूण, कुषाण, तुर्क, मुगल, पठान, फ्रेंच, डच, अंग्रेज आए। हम धन

और वैभव में जीने वाले समाज रहे हैं। हां, अर्थ और काम धर्म और मोक्ष के नियंत्रण में ही मंगलमय होता है, कल्याणकारी होता है। अतः धर्म के अनुशासन में ही अर्थ का उपार्जन करते हैं, और काम का उपभोग करते हैं और समय आने पर उससे असंग उपराम भी हो जाते हैं, इन दोनों से ऊपर उठ जाते हैं। इस तरह जीवन का विकास एक पक्षीय नहीं होता है, जीवन में सड़ान नहीं आती। हमने धन-वैभव की तरह ज्ञान-विज्ञान में, धर्म और दर्शन में, सभ्यता और संस्कृति में, कला और कौशल में परम विकास किया और 18वीं शताब्दी तक भारत विश्व में इस दृष्टि से भी सबसे आगे था। इसलिए विश्व के साधक और ज्ञान-पिपासु इस दृष्टि से अपनी प्यास बुझाने के लिए भारत आते रहे हैं और अपने में कृत-कृत्यता, धन्य-धन्यता, पूर्ण-पूर्णता का अनुभव करते रहे हैं। और इस प्रकार भारत में जीवन का समग्र-सर्वाङ्गीण विकास साधित होता रहा है। अतः मनुष्य के सामने चार आदर्श, जीवन लक्ष्य या मूल्य रखे जिसके अन्दर अन्य सारे जीवनमूल्य समाविष्ट हो जाते हैं, वह हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसके द्वारा लौकिक अभ्युदय, पारमार्थिक निःश्रेयस, लोक-परलोक, जगत् का भला और अपनी मुक्ति, सभी सिद्ध हो जाते हैं।

पृष्ठ 120 मूल्य ₹ 70

भारतीय परम्परा में नारी और मातृत्व के पंचविध रूप

भारतीय परम्परा में नर-नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में नहीं, नर-नारी दोनों मिलकर एक इकाई बनते है, इस रूप में विचार किया गया है। भारतीय परम्परा में नारी जीवन की क्या महत्ता है, क्या भूमिका है, उसका क्या उत्तरदायित्व है इसको दर्शाया गया है। नारी शिक्षित एवं संस्कारित होती है तो पूरा परिवार शिक्षित व संस्कारित होता है, क्योंकि वह एक परिवार के रूप में जीती है। पुरुष शिक्षित होने पर अकेला शिक्षित होता है, क्योंकि वह व्यक्ति के रूप में जीता है। पुरुष शरीर से नारी शरीर की महत्ता इस बात में है कि वह पुरुष की अपेक्षा भगवान को सहजता से पा सकती है, क्योंकि जिन गुणों के आधार पर नर से नारायण की यात्रा सम्पन्न होती है वे सब गुण, यथा—सेवा, त्याग, तपस्या, निष्ठा, समर्पण, तितिक्षा आदि-गुण—उसमें नैसर्गिक रूप में, जन्मजात उसे प्राप्त होते है। अतः नारी को भारतीय परम्परा में सर्वोच्च महत्त्व दिया गया है। इसके अपमान को कभी सहा नहीं भले ही इसके लिये रामायण रचनी पड़ी हो, महाभारत रचनी पड़ी हो। नारी का मुख्य क्षेत्र घर है पर समय की आवश्यकता के अनुसार शील, चरित्र एवं नारीत्व को सुरक्षित रखते हुए बाहर की गतिविधियों

में अवश्य भाग लेवे। नारीत्व की पूर्णता मातृत्व में होती है। सृजन करना और चरित्र निर्माण करना, संस्कारित एवं त्राण करना है। मातृत्व के पंचविध रूप (जगन् माता, राष्ट्रमाता, व्यक्तिगत माता, गोमाता, गंगामाता) को स्पष्ट किया गया है। भारतीय परम्परा में हुई—तेजस्वी नारी रत्नों तथा भारतीय परम्परा में पली विदेशी नारी रत्नों की भी एक झलक मिलेगी।

पृष्ठ 144 मूल्य ₹ 85

भारतीय परम्परा में उत्सव

भारतीय समाज उत्सवप्रिय समाज है। उत्सव की प्रियता और अधिकता भारत की समृद्धि को उसके ऊँचे सांस्कृतिक स्तर को सिद्ध करती है। भारत सचमुच रत्नगर्भा शस्य श्यामला देश है जो थोड़े से प्रयास से ही हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर देता है। जिस देश के वासियों का सारा समय दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लग जाता है उनके पास उत्सव पालन के लिए समय कहाँ? धन कहाँ? हमारे देश का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होने के कारण हमारे उत्सव मन को संस्कारित करने वाले, मन को ऊर्ध्वदिशा देने वाले, सत्य के प्रति निष्ठा जगाने वाले, देव विग्रह में, परब्रह्म परमात्मा में, आत्मा में निमज्जित करने वाले होते हैं। पर जिन देशों का सांस्कृतिक स्तर निम्न होता है उनके उत्सव मन को कुपथ-गामी, अधोगामी, विषयी बनाने वाले होते हैं। यह स्थिति इस्लाम-ईसाइयत आदि की है। रमजान के माह का पालन करने के पश्चात् काफिरों के घात का आदेश देते हैं उनके शास्त्र। भारतीय उत्सव हमारे राष्ट्रजीवन का प्राण है जो जन-जीवन में पुनः-पुनः प्राण संचार करता है और हमारे पूर्वजों की पुण्य परम्परा से, उसके कर्तृत्व-व्यक्तित्व एवं आदर्शों से जीवन-मूल्यों से जोड़े रखता है।

पृष्ठ 112 मूल्य ₹ 70

मकर संक्रान्ति, विक्रम संवत् और अग्रसेन जयन्ती

मकर संक्रान्ति केवल हिन्दू जाति का नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व का सर्वप्रथम उत्सव है। भारतीय धर्म परम्पराओं एवं ज्योतिष गणनाओं के अनुसार मकर संक्रान्ति दिवस (माघ मास की सौर गणना का प्रथम दिवस) धरती माता के जन्म

की पावन जयन्ती का उत्सव माना जाता है। पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में प्रायः सभी धर्मों में बड़ी भ्रान्त कल्पनाएं है। कुरान शरीफ के अनुसार पृथ्वी सूर्य के जन्म से पहले ही वर्तमान थी। अल्लाताला ने दुनिया की तारीकी (अन्धेरे) को दूर करने के लिए ही चाँद और सूरज बनाए। ईसाई धर्म का पृथ्वी को चपटा मानना इतिहास प्रसिद्ध है। पृथ्वी को गोल कहने वाले प्रसिद्ध नक्षत्र वैज्ञानिक गैलीलियो को आजीवन दारुण यातनाएं देकर मारने वाले ईसाइयों की धर्मान्धता पर मानवता अश्रु बहा रही है। इसके विपरीत हमारे यहां भूगोल नाम ही पृथ्वी के गोल होने का परिचायक है। मनुस्मृति में केवल पृथ्वी को ही नहीं, वरन् समस्त सृष्टि (ब्रह्माण्ड) को अण्डाकार कहा गया है। मकर संक्रान्ति धरती माता का जन्मोत्सव माना जाता है। इस दिन धरती सूर्य से पृथक् हुई थी।

नववर्ष प्रतिपदा का मंगलमय पर्व विश्व के प्रथम सूर्योदय का पर्व है। आज के दिन ही परदुःखभंजक, प्रजावत्सल, महाराज शकारि विक्रमादित्य ने ही इसी दिन से संवत् प्रारंभ नहीं किया अपितु उसके पूर्व के सभी संवतों का प्रारंभ भी इसी पावन दिवस से हुआ था। चैत्र मास हमारे पंचांग का प्रथम मास है, उसकी प्रतिपदा हमारे संवत्सर का प्रथम दिवस है। वैदिक काल में चैत्र मास को ही मधु-मास कहते थे, क्योंकि इसी मास में वसंत होता है। वसंत ऋतु को हमारे वैदिक वाङ्मय में 'मुखं ऋतुनाम्' अर्थात् सबसे प्रथम ऋतु कहा गया है। इसी दिन जीव सृष्टि का आरंभ भी माना जाता है।

महाराजा अग्रसेन महाभारत काल से भी पहले इस धराधाम में अग्रोहा नामक स्थान पर राजधानी स्थापित करके वहां एक आदर्श रामराज्य स्थापित किये हुए थे। उनकी संतानें जहां-जहां संसार भर में बिखरीं, देश भर में, विदेश में भी गए। ये लोग अग्रसेन की संतान होने से अग्रवाल कहलाये। जैसे ही परशुरामजी का क्षत्रियों पर कोप प्रारंभ हुआ उस समय अनेक जातियां बिखरीं और भाग गई और उनके भय से अपना व्यवसाय बदल कर वणिक व्यवसाय प्रारंभ कर दिया। इस तरह स्पष्ट है महाराजा अग्रसेन की संतानें अग्रवाल के नाम से प्रसिद्ध हुई।

इतिहास के किस काल खण्ड में, किन कारणों से, कैसे राजा की संतति व्यापार में लग गई और यह प्रसिद्ध वैश्य समाज व्यापारी वर्ग बनकर देश की व्यापारिक स्थिति को सम्हाले हुए है, यह एक रहस्य है कि इनका राज्य कैसे लुप्त हो गया? और भविष्यत् के लिए राज्य न करके केवल व्यापार में लग गए यह खोज का विषय है।

पृष्ठ 48 मूल्य ₹ 40

हमारे आध्यात्मिक महापुरुष

अपने देश में हर युग में ऐसे युगपुरुष, अवतारी पुरुष, महापुरुषों का पदार्पण होता आया है, निर्माण होता आया है जिन्होंने युग की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए इस देश का नेतृत्व किया है। भारतीय जातीय जीवन के प्रत्येक युग में ऐसे-ऐसे आध्यात्मिक दिग्गज हुए जिन्होंने न केवल देश को वरन् सारे विश्व को प्रभावित किया है।

सारे ऋषि, अवतार उत्तर भारत ने दिये। पूर्व-मध्यकाल में भारत पर संकट आया तब उत्तर भारत का उपकार चुकाने के लिये दक्षिण भारत ने आचार्य पैदा किये—शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, विष्णु स्वामी—सभी आचार्य दक्षिण भारत ने दिये।

मध्यकाल में संस्कृति पर जब पुनः संकट आया तो मध्य भारत, महाराष्ट्र, संयुक्तप्रांत आदि क्षेत्र ने सन्त-महात्मा पैदा किए—ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, गुरु एकनाथ, समर्थ गुरु रामदास, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा।

आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति पर भीषणतम प्रहार पश्चिम से हुआ। अतः इस बार भारत का पूर्वांचल संस्कृति-रक्षण के पुनीत कर्तव्य के लिये आगे बढ़ा। आधुनिक नवोत्थान का अग्रदूत बंगाल बना।

बंगाल ने आनन्दावतार चैतन्य महाप्रभु पैदा किया, धर्म के जीते-जागते स्वरूप रामकृष्ण परमहंस तथा विश्व विजेता स्वामी विवेकानन्द पैदा किए, वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, राजा राममोहनराय तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर पैदा किये। महापुरुष सारे भारत में पैदा हुए।

भारतीय संत परम्परा और सेमिटिक संत परम्परा में मूलभूत अंतर है। London Times ने गांधीजी को श्रद्धांजलि देते हुए कहा—

No country but India and no religion but Hinduism could have given birth to a Gandhi. यह बात केवल गांधीजी के प्रति ही नहीं भारत के सभी महापुरुषों के विषय में कह सकते हैं। भारतीय परम्परा में संतहृदय को नवनीत के समान कहा है, रामचरितमानस के अमर गायक गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'मुदमंगलमय संत समाजू' कहकर वंदना करते हुए उन्हें संसार में चलते-फिरते तीर्थ की हृदयहारी एवं भावगर्भित उपमा दी है।

किन्तु यह बात सेमिटिक परम्परा के संतों के विषय में नहीं कह सकते हैं। उनके यहाँ तो काफिरों, हिडेनों से घृणा करने, उनके निर्मम वध को पुण्यकार्य,

आदर्शकर्म और स्वर्गप्रद बताया गया है तथा अपने पंथ विस्तार के लिए जो भी उचित-अनुचित कार्य किया, जितना अधिक मानवता को रक्त से स्नान कराया, सर्वसंहार किया वे उनके आदर्श पुरुष हैं, संत हैं।

पृष्ठ 248 मूल्य ₹ 150

गोस्वामी तुलसीदास

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में कुछ समय ऐसा भी रहा है जब विदेशी आततायी शक्तियों ने भारत पर अपना शासन स्थापित कर लिया जिसके फलस्वरूप कुछेक भारतवासियों ने इन विदेशी शक्तियों के सामने घुटने टेक दिए। ऐसे ही क्षणों में जब दासता, आपसी झगड़े, धर्म, जाति के नाम पर संघर्ष और मुस्लिम शासकों की बन्दूक और तलवार के बल पर दमन नीति बढ़ी हुई थी, निजी स्वार्थ और अज्ञान बढ़ रहा था, उस समय भारत के क्षितिज पर एक ऐसी आशा की किरण का उदय हुआ जिसने कालान्तर में भारतीयों को झकझोर कर विदेशी दासता एवं शारीरिक और मानसिक तमस से जगाया। उसके शब्दों ने मुरझाए चेहरों को नई शक्ति दी और डूबते हुए राष्ट्र को सहारा दिया। उनके संदेश से इस धरा पर एक नयी चेतना आ गई और पूरा विश्व संगीतमय दोहों और चौपाइयों के स्वर से गुंजित हो उठा। वे हमारी संस्कृति के महान् रक्षक थे और उन्होंने हमारे धर्म और विश्वास को एक नयी दिशा दी।

प्रख्यात पश्चिमी विद्वान् डॉ. ग्रियर्सन जिन्होंने भारतीय साहित्य का विपुल अध्ययन किया है, तुलसीदास को भगवान् बुद्ध के बाद सबसे महान् सांस्कृतिक नायक मानते हैं, जिन्होंने अगली कई शताब्दियों के लिए दर्शन एवं सांस्कृतिक विचारधारा पर अपना प्रभाव छोड़ दिया है। उनकी प्रेरणा और विचारधारा का प्रभाव इतना प्रबल और विस्तृत है कि तुलसी रामायण का पाठ बड़े-बड़े महलों से लेकर गरीब की झोपड़ी तक में बड़ी श्रद्धा व आस्था से होता है।

पृष्ठ 56 मूल्य ₹ 50

हमारे साहित्यकार

भारत के प्रथम ब्रिटिश गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग ने एक बार कहा था कि 'यदि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को तराजू के एक पलड़े में रखा जाए, और दूसरे में शेक्सपियर के साहित्य को रखा जाए और मुझसे पूछा जाए कि मैं किसे

अधिक मूल्यवान समझता हूँ तो मैं भारत जैसे विशाल देश में ब्रिटिश साम्राज्य को ठुकरा दूँगा, किन्तु मैं अपने महाकवि शेक्सपियर को नहीं त्यागूँगा। फिर भारत का साहित्य जगत में अवदान विश्व में अनमोल है। साहित्य की दृष्टि से भारत विश्व का शिरोमणि देश है। वास्तव में भारत ने अन्तर्जगत में डुबकी लगाकर जिन अमूल्य विचार रत्नों की उपलब्धि प्राप्त की है वह अतुलनीय है, उसके सम्मुख शेष विश्व की सम्पदा फीकी पड़ जाती है।' भारतीय साहित्य जहाँ गौरवमय अतीत का चित्रण करता है वहाँ वर्तमान की दशा बताकर भविष्य को उज्ज्वल दिशा देने का कार्य करता है जिससे व्यक्ति जीवन और समाज-राष्ट्र जीवन अपना अभ्युदय और निश्रेयस सिद्ध कर सके तथा विश्व में पुनः अपना योग्य स्थान पा सके।

पृष्ठ 120 मूल्य ₹ 75

हमारे स्वतंत्रता सेनानी

भारत धीरों और वीरों की भूमि है। भारत के वैभव से आकृष्ट होकर जब-जब विधर्मी विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत भूमि को आक्रान्त किया है तब-तब भारत के स्वातंत्र्य सेनानियों ने उनके आक्रमणों को विफल कर भारत के स्वातंत्र्य सूर्य को विश्व के गगनमण्डल पर पुनः-पुनः फहराया है और भारत के गौरव को अक्षुण्ण रखा।

भारत के स्वातंत्र्य सेनानियों और विश्व के अन्य देश के स्वातंत्र्य सेनानियों में एक मौलिक अन्तर है। भारत सारी वसुधा को एक कुटुम्ब मानता है इसलिए भारत ने तलवार (शस्त्र) के बल पर विश्व विजय की आकांक्षा कभी नहीं संजोयी। विश्व के अन्य देशों पर राजसत्ता द्वारा शासन करने की बात न कभी मन में लायी और न कभी विश्व के अन्य देशों पर आक्रमण किया। पर विश्व के अन्य देश ने अपने राजनीतिक वैभव काल में अन्य देशों पर आक्रमण किया और उसी क्रम में भारत पर भी आक्रमण किया, तो हमने उसको सहा नहीं और मुंहतोड़ उत्तर दिया, और जब तक उनके आक्रमण को पूर्णतः निरस्त नहीं किया तब तक हमने स्वातंत्र्य समर जारी रखा और यह स्वातंत्र्य समर आज भी जारी है। हमारी कुछ दुर्बलताओं के कारण हमारे भाई विधर्मी और विदेशी बन गये हैं, इनको पुनः स्वधर्म और राष्ट्रीयधारा में लाने तक अविराम संघर्ष जारी रहेगा।

पृष्ठ 160 मूल्य ₹ 100

सिख परम्परा, उनकी समस्या और समाधान

जब मुगल महीपों के काले-काले बादल भारताकाश में छायें हुए थे और चतुर्दिक दुःख, दास्य, दैन्य, दौर्बल्य की विकराल रात्रि का साम्राज्य था उस समय जाति को संकट सागर से उबारने के लिए जिन महान् विभूतियों का आविर्भाव हुआ उनमें सिख गुरुओं का योगदान विशेष महत्त्व का है। ये सभी हिन्दू धर्म के अभिन्न अंग थे। ये सभी हिन्दू धर्म की वीर भुजा के रूप में प्रत्येक हिन्दू परिवार ने अपना प्रथम पुत्र देकर हिन्दू धर्म का रक्षात्मक मोर्चा निर्माण किया था। पर अंग्रेजी काल में फूट डालो शासन करो नीति के तहत अंग्रेजों की कूटनीति के शिकार होकर अलगाव के भाव को प्रश्रय मिला। स्वराज्य के पश्चात् इस अलगाव को विराम चिह्न मिलना चाहिए था। पर दुर्भाग्य से देश के बंटवारे और स्वाधीनता के बाद भी जिस प्रकार मुस्लिम तोषण, ईसाई, तोषण चला वैसे ही सिखों का भी तोषण का क्रम जारी रहा फलस्वरूप स्वाधीन भारत में भी पंजाब की समस्या उठ खड़ी हुई। और आज भी अन्तर्धारा के रूप में जारी है जिसे स्वस्थ, सबल, संबद्ध, अखण्ड भारत को बनाने के लिए इसे दूर करने की आवश्यकता है। इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए यह पुस्तिका है।

पृष्ठ 80 मूल्य ₹ 50

विश्व भारत का चिर ऋणी है

आर्य कहीं बाहर से नहीं आए, इसी देश के मूल वासी थे, यहीं से सारे विश्व में फैले। भारत 'अग्रजन्मा' है, 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' होने से विश्व में आलोक भारत से फैला। आज भी विश्व के इतिहास से चार परदे हटा दिए जाएं—ईसा से पूर्व यूरोप, इस्लाम से पूर्व अरब, कोलम्बस से पूर्व अमेरिका और फिलीप से पूर्व फिलिपाइन तो आप स्पष्ट रूप से देखेंगे सारे विश्व में हिन्दू संस्कृति ही फैली हुई थी। भारत विज्ञान का भी जनक ही नहीं 18वीं शताब्दी तक विश्व में अग्रगण्य था, पश्चिम में विज्ञान की जययात्रा भारतीय विज्ञान के बल पर ही सम्भव हुई है। दर्शन के क्षेत्र में भारत विश्व का शिरोमणि देश है।

आज विश्व में जो पर्यावरण की समस्या उठ खड़ी हुई है वह बाइबिल के दूषित विचारों के कारण है ऐसा स्पष्ट ब्रिटिश इतिहासकार अर्नाल्ड टोयनबी एवं अन्य पर्यावरणविद् स्वीकार कर रहे हैं और इससे निजात भारतीय दृष्टि अपनाकर ही सम्भव है जो सारे चराचर में एक ही ईश्वर, आत्मा का वास मानते हैं। इन सब दृष्टियों से पुनः वर्तमान में विश्ववासियों का भारत के धर्म-दर्शन, सभ्यता-

संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल के प्रति आकर्षण निरन्तर बढ़ता जा रहा है। स्पष्ट है इन सब दृष्टियों से विश्व भारत का चिर ऋणी है।

पृष्ठ 312 मूल्य ₹ 300

हमारी राष्ट्रीय समस्याएं

भारत में विश्व की तीन अन्तरराष्ट्रीय शक्तियाँ—विश्वव्यापी ईसाई शक्ति, विश्वव्यापी इस्लामी शक्ति एवं कम्यूनिज्म की शक्ति आज धर्मप्राण भारत को ही शिकार का लक्ष्य बनाकर बड़े भीषण रूप से क्रियाशील हैं। अतः भारत एवं भारतीयता की रक्षा हेतु विश्वव्यापी हिन्दुत्व की शक्ति के महाजागरण की आवश्यकता है। विदेशी षड्यन्त्रों से त्राण पाने के लिये वे सभी हिन्दुओं का आह्वान करते हुए कहा करते थे—'हे हिन्दू! तू बिन्दु-बिन्दु बनकर मत बिखर। तू बिन्दु-बिन्दु मिलकर सिंधु बन, वेग से बह, तब तुम्हारी धारा को कोई मोड़ नहीं सकेगा। हर हिन्दू जो आया है, उसको एक दिन मरना है, किन्तु हिन्दू समाज को मरना नहीं है। इसलिये हे हिन्दू! तू बिन्दु का जीवन छोड़कर सिंधु का जीवन जी। हे हिन्दू! तू सिंधु बन जा। धारा को अमर बना जा। हिन्दुओं के संगठित रहने से ही देश सुरक्षित रह सकता है'—ऐसा प्रो. ओबराय का स्पष्ट अभिमत था। डॉ. ओबराय का कहना था हिन्दुओं को बचना है तो डॉ. एनी बीसेंट की बात हर हिन्दू को गांठ बांध लेनी चाहिए—कि 'हिन्दुत्व के बिना, भारत का कोई भविष्य नहीं, कोई अस्तित्व नहीं....। जिस प्रकार भारत में प्रश्रय पाने के लिए पारसी, यहूदी, इसलाम व ईसाई समाज आया वैसे वापस चला जाए तो भी भारत-भारतवर्ष रहेगा, पर हिन्दुत्व मिट गया तो भारत मिट जाएगा। क्योंकि हिन्दुत्व ही भारतवर्ष का मूल है.... और इसकी रक्षा हिन्दुओं को ही करनी पड़ेगी।' और हिन्दुओं में जो जयचन्द की परम्परा निभा रहे हैं, तुच्छ स्वार्थ के वशीभूत होकर वे भविष्य में, इतिहास के कूड़ेदानी में फेंक दिये जायेंगे जैसा कि अतीत के जयचन्द, मानसिंह आदि को कोई नहीं पूजता, पृथ्वीराज और राणाप्रताप सर्वत्र पूजित हैं।

यूरोप में राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई है। भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। भारत धर्म प्रधान देश है। पश्चिमी एवं अरब राष्ट्र मजहब प्रधान देश हैं। मजहब में एक पूजा पद्धति, एक विश्वास एक पैगम्बर या ईश्वर का पुत्र या दूत या एक आचार्य होता है। धर्म समग्र जीवन और पूरे चराचर से सम्बन्धित है, जिसमें अनेकों पूजा पद्धतियों, अनेकों विश्वास और आचार्यों का समावेश हैं। अंग्रेजों ने षड्यन्त्रपूर्वक हिन्दू धर्म के समकक्ष इसलाम और ईसाइयत को एक समान धरातल

पर लाकर खड़ा कर दिया। स्वाधीनता के पश्चात् यह स्थिति बदलनी चाहिये थी। पर जिनको प्रथम प्रधानमन्त्री बनने का अवसर मिला वे भारतीय पम्परा से, धर्म व संस्कृति से कटे होने के कारण और सेमिटिक परम्परा में, यूरोपीय परम्परा में, मुगलों की परम्परा में ढले होने के कारण उन्होंने तो इसलाम और ईसाइयत को हिन्दू धर्म के समकक्ष ही नहीं रखा वरन् उन्हें और अधिक वरीयता दे दी और उन्हें संवैधानिक विशेष-विशेष सुविधाएँ एवं संरक्षण दे दिया और सेकुलर (Secular) शब्द की व्याख्या पंथ निरपेक्ष न कर धर्मनिरपेक्ष कर दी। भारतीय परम्परा में धर्मनिरपेक्ष शब्द बनता ही नहीं। यूरोप में इस शब्द की उत्पत्ति हुई। और वहाँ भी सेकुलर शब्द का अर्थ पंथ निरपेक्ष या सर्वपंथ समभाव था। वहाँ शासन पंथ के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा, यही इसका आशय था। पर अपने देश में उलटी गंगा बहाते हुए इसे धर्मनिरपेक्ष कर दिया गया। और यह धर्मनिरपेक्षता हिन्दुओं पर लागू है—मुसलमान और ईसाई पर नहीं। संविधान और व्यवहार में शासन हिन्दू धर्मनिरपेक्ष और मुस्लिम एवं ईसाई पंथ सापेक्ष चल रहा है। इस प्रकार अपने ही देश में, अपने ही देश की मूल चेतना धर्म और संस्कृति की उपेक्षा होने से और इसलाम एवं ईसाई पंथ को नाजायज सुविधा, संरक्षण और बढ़ावा मिलने का दुष्परिणाम यह हो रहा है कि जो इसलाम-ईसाइयत ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का विरोधी, पर्यावरण का विरोधी, नारी विरोधी, अपने ही पंथ के अन्य सम्प्रदाय को भी काफिर, हिडेन मानने वाले, उनसे खून की होली खेलने वाले अन्यों के विषय में तो कहना ही क्या इसमें इतिहास साक्षी है, ये मानवतावादी कहला रहे हैं और हिन्दू जो ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का सम्मान करने वाले, सारे चराचर को अपने आलिंगन में बाँधने वाले को साम्प्रदायिक कहा जा रहा है, इससे देश में अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई। अतः हिन्दू धर्म और संस्कृति और सेमिटिक पंथों के वास्तविक रूप और हिन्दू धर्म-संस्कृति की उपेक्षा से उत्पन्न संकटों से सम्बन्धित लेख इसमें शामिल किये गये हैं।

पृष्ठ 216 मूल्य ₹ 130

साक्षात् धर्म विग्रह प्रभु श्रीराम और भारतीय जीवन का अखण्ड प्रवाह

हम संपूर्ण धर्म और धर्मपूर्ण बर्ताव का आदर्श किन्हीं एक महापुरुष में देखना चाहें तो वह सर्वप्रथम प्रभु श्रीराम के जीवन में दिखाई पड़ता है। इसलिए प्रभु

श्रीराम को साक्षात् धर्म विग्रह कहा जाता है। आज तक प्रभु राम के समकक्ष या इससे ऊँचा आदर्श कोई प्रस्तुत नहीं कर सका न भविष्य में सम्भावना है।

श्री रामसेतु के प्रकटन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि हमारा राष्ट्र जीवन आज से कम से कम सत्तरह लाख वर्ष पुराना है। अतः स्पष्ट है भारत का राष्ट्र जीवन वेद काल से यानी सृष्टि के प्रारम्भ से जब प्रभु में यह संकल्प उठता है 'एकोऽहम बहुस्याम'—अखण्ड रूप से प्रवाह रूप से आज तक चला आ रहा है और भविष्य में यावत् सृष्टि पर्यन्त अक्षुण्ण रहेगा। भारत एक सांस्कृतिक राष्ट्र है।

हमारे भारतीय राष्ट्र जीवन का क्या-क्या आधार है। भारत राष्ट्र एवं संस्कृति के निर्माण में, उनके संरक्षण संवर्धन में जिन-जिन महापुरुषों का विशेष योगदान है उसकी भी एक झांकी प्रस्तुत की गई है। भारत राष्ट्र की सनातनता का, चिरजीविता का, सफलता का रहस्य क्या है दिखाया गया है।

काल का प्रवाह सदा एक-सा नहीं रहता। विकास सीधी रेखा में नहीं होता। यह चक्राकार घूमता है। चाहे व्यक्ति जीवन हो, परिवार जीवन हो, समाज जीवन हो एवं राष्ट्र जीवन सभी में उत्थान-पतन के दौर आते हैं। इसी क्रम में विगत 1,000-1,200 वर्षों से राष्ट्र जीवन के प्रवाह में क्या-क्या अवरोध आ गये हैं। भ्रान्तियां निर्मित हो गयी, उस पर विचार किया है।

अब पुनः विश्व स्तर से भारत विश्व की मांग बनता जा रहा है। भारत का पुनरुत्थान न केवल भारत के लिए वरन् विश्व के लिए अनिवार्य होता जा रहा है। क्योंकि भारत के पास ही वह दृष्टि है, व्यक्तित्व है, कर्तृत्व है इतिहास है, जो सारे चराचर को एक परिवार के रूप में देखता है। भारत की राह पर चलकर ही पूरे विश्व से दुःख-दैन्य, अज्ञान का नाश होकर सुख, शांति, समृद्धि, समाधान एवं सामंजस्य का राज्य स्थापित हो सकता है। इसलिए ऋषि अरविन्द कहते हैं—भारत उस सत्य का रक्षक है जो विश्व का रक्षक है।

हिन्दुत्व का कोई खांचा नहीं है और न ही अंतिम रेखा है क्योंकि इसमें हर दिन एक नए विचार का सूत्रपात होता है। इसलिए सनातन परम्परा का प्रवाह है, यह प्रवाह निरंतर चलता है, इसलिए निरंतर नई-नई बातें जुड़ती है, नई-नई खोज होती है और ये नई खोजों को प्रोत्साहित करता है, नए विचार को स्वीकार करता है, उनका सम्मान करता है। इसी प्रवाह को हम हिन्दुत्व कहते हैं। इसलिए ऋषि अरविन्द घोष कहते हैं सनातन भारत निर्जीव नहीं है। और न उसने अपना अन्तिम रचनात्मक शब्द ही कहा, वह जीवन्त है और अपने लिए तथा मानव जाति के लिए अभी कुछ करना शेष है।

पृष्ठ 744 मूल्य ₹ 1100

ॐ श्रीदक्षिणामूर्तये नमः

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

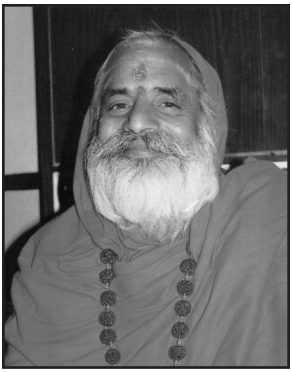

असंख्य महाप्रलयों को, ब्रह्माओं को, कल्पों-मन्वन्तरों और युगों के रूप में प्रवाहित यह अनादि सृष्टि हर कालखण्ड में अपनी विशिष्ट साज-सज्जा को अनावृत करती है। जिस कालखण्ड में तम की शक्तियां प्रकाश की शक्तियों को पराजित कर अट्टहास करती हैं उसी कालखण्ड में तब अवतारों और महापुरुषों के रूप में परम-तत्त्व की मुक्त मुसकान मानव को प्रेम, शान्ति और सुख का अनुभव कराती है—दिव्य-प्रकाश को फैलाती है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

स्व. डॉ. हरवंशलाल ओबराय की रचनाओं को इन ग्रंथों के रूप में प्रस्तुत करने में उनके भ्रातात्रय (डॉ. मदनलाल ओबराय, श्री वृजभूषण ओबराय, श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय) का सब प्रकार से श्लाघनीय सहयोग रहा है। उनके इस भावपूर्ण सहयोग के अभाव में ग्रंथों का प्रकाशन असंभव हो जाता। एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं। उन पर तथा उनके समूचे कुल पर प्रभु की कृपा बरसती रहे—यह शुभ कामना है।

—स्वामी संवित् सोमगिरि (महंत)
श्री लालेश्वर महादेव मन्दिर, शिवमठ
शिवबाड़ी, बीकानेर 334003 (राजस्थान)

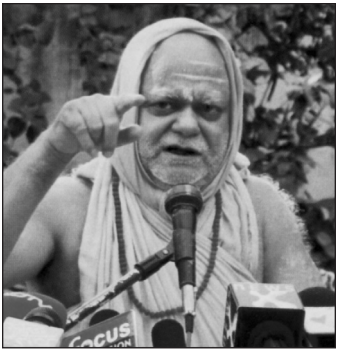

आशीर्वचन पत्र-1

श्री स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी
मानव-प्रबोधन-प्रन्यास
शिवमठ, शिवबाड़ी, बीकानेर 334003
राजस्थान

।।श्रीहरिः।।

—श्रीगणेशाय नमः—

'धर्मनियन्त्रित पक्षपातविहीन-शोषणविनिर्मुक्त सर्वहितप्रद शासनतन्त्र' भारत की अपूर्व विशेषता रही है। यहां के सनातन मनीषियों ने कालक्रम से विलुप्त ज्ञान-विज्ञान को तपोबल से प्रकट करने और विकृत ज्ञान-विज्ञान को विशुद्ध करने के दायित्व का दक्षतापूर्वक निर्वाह किया है। उन्होंने हिरण्यकशिपु, वेन, रावण, दुर्योधन—जैसे दुर्दान्त शासकों को एवं विधर्मियों के कुचक्र को दक्षतापूर्वक विलुप्त कर प्रह्लाद, पृथु, श्रीराम, युधिष्ठिर सरीखे शासकों को उद्भासित कर सर्वहितप्रद शासनतंत्र को प्रतिष्ठित किया; तद्वत् सुधन्वा एवम् शिवाजी जैसे धर्मपरायण-ओजस्विता, शूरता, सुशीलता संपन्न कुशल प्रशासकों को राजपीठ पर पदासीन कर वैदिक साम्राज्य की स्थापना की। इस संदर्भ में देवर्षि नारद, महर्षि भृगु, ब्रह्मर्षि वसिष्ठ, मुनि पुङ्गव व्यास, भगवत्पाद शंकराचार्य और समर्थ श्रीरामदासादि की भूमिका सराहनीय है। वैदिक वाङ्मय की समृद्धि एवम् स्वस्थ क्रान्ति के माध्यम से वैदिक साम्राज्य की प्रतिष्ठा उक्त मनीषियों की अमिट अद्भुत गाथा है।

भारत की मेधाशक्ति, रक्षाशक्ति, अर्थशक्ति और श्रमशक्ति के विश्वस्तर पर दोहन तथा दुरुपयोग से चिंतित सनातन संस्कृति के प्रति आस्थान्वित डॉ. हरवंशलाल ओबराय की कृतियों के संकलन एवं प्रकाशन में संलग्न स्वामी संवित्-सुबोधगिरिजी को तदर्थ साधुवाद है।

अनन्त श्री विभूषित स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती श्रीमज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
गोवर्द्धनमठ-पुरीपीठ
भाद्रशुक्ल चतुर्दशी 2068 संवत्

आशीर्वचन पत्र-2

ॐ

श्रीशंकरमठ
आबू (राज.)
23.11.11

श्री स्वामी सुबोधगिरिजी

ॐ नमो नारायणाय।

आप द्वारा प्रेषित सद्ग्रंथ के दो संग्रह पाकर अति प्रसन्नता हुई। एक संग्रह श्री स्वामी शारदानन्दजी (महन्त, झूँसी-इलाहाबाद) को प्रेषित कर दिया। विषयसूची देखकर एवं सम्पादकीय पढ़कर प्रभावित हुए बगैर रहा नहीं जा सकता। आपका श्रम सराहनीय एवं अनुकरणीय है। भारतीय मनीषियों ने इतने सद्रत्न अपनी रचना-पिटारियों में संजोये हैं कि उनकी बहुतायत के चलते उनकी उपेक्षा हो रही है। विषयवार यदि वे प्रसंग उपलब्ध हों तो आधुनिक चेतना उनका मूल्य समझे एवं उनके आलोक से उपकृत हो यह संभव है। वाल्मीकि-व्यास-शंकर आदि के भी वचन वर्गीकृत मिल सकें तो बड़ी उपलब्धि हो। भगवत्प्रेरणा से आप इस तरह की संस्कृति-सेवा करते रहें—इस शिव प्रार्थना सहित

स्वयंप्रकाशगिरि

पुस्तक समीक्षा

डॉ. हरवंशलाल ओबराय भारतीय संस्कृति के विख्यात अन्वेषक तथा मूर्धन्य विद्वान् थे। उन्होंने विश्व के 106 देशों की यात्रा की। पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध उन्हें लेशमात्र भी उनकी भारतीय संस्कृति की निष्ठा से विचलित नहीं कर सकी। वे सर्वत्र भारतीय संस्कृति की महिमा से जनमानस को अवगत कराते रहे। उनकी लेखनी सर्वत्र गौरवमयी भारतीय संस्कृति के तत्त्वों का अन्वेषण करती रही। उनके जीवन के मुख्य प्रेरणास्रोत स्वामी विवेकानन्द, मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य तिलक, डॉ. राधाकृष्णन् और आचार्य रघुवीर थे। इन महामनीषियों एवं उत्कृष्ट कोटि के विद्वानों ने उनके जीवन में भारतीय संस्कृति का बीजारोपण किया, जो बाद में पल्लवित और पुष्पित होकर समाज के लिये उपयोगी बना। उन्होंने जुगल किशोर बिड़लाजी की प्रेरणा से राँची में संस्कृति-विहार की स्थापना

की, जिससे छोटानागपुर के आदिवासी क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति की ज्योति प्रज्वलित हुई। वहाँ बहुत से सेवाकार्य भी किये गये, जिससे वहाँ के अतिरिक्त बिहार के अन्य क्षेत्रों में भी जागृति हुई। उनका सम्पूर्ण जीवन मानवता की सेवा में समर्पित रहा।

ऐसे भारतीय संस्कृति और मानवता के सेवक डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी द्वारा लिखित एवं दिये गये व्याख्यानों का संकलन 'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' नामक ग्रन्थ के रूप में सन्तप्रवर स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी के द्वारा किया गया है, जो स्वामीजी की प्रखर मेधा तथा अदम्य पुरुषार्थ का परिचायक है। प्रस्तुत ग्रन्थ तीन खण्डों में विभाजित है (सम्प्रति दो खण्ड और प्रकाशित हुए हैं, जिनकी समीक्षा बाकी रह गयी है)।

प्रथम खण्ड—राष्ट्रीय समस्याओं और इतिहास से सम्बन्धित लेखों का संकलन है। विभिन्न देशों की संस्कृति एवं इतिहास पर चर्चा की गयी है। स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन : एक संगोष्ठी का विवरण एवं राष्ट्रस्यचक्षु इतिहासमेतत् आदि लगभग 80 लेख एवं विभिन्न विषयों से सम्बन्धित बहुत से चित्र भी दिये गये हैं। प्रश्न है—इतिहास क्या है? उत्तर है—इतिहास एक राष्ट्र के उत्थान-पतन की गाथा है। राष्ट्रस्यचक्षु इतिहासमेतत्—अर्थात् इतिहास राष्ट्र का चक्षु है। इसके द्वारा राष्ट्र अपने अतीत को पहचानता है। वर्तमान को समझने की चेष्टा करता है और भविष्य के निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करता है।

द्वितीय खण्ड—महापुरुषों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अवलम्बित है। इसमें लगभग 96 लेखों में सन्तों, राजनेताओं, साहित्यकारों, स्वतंत्रता-सेनानियों, वीर शहीदों, प्रतापी राजाओं आदि अनेक प्रकार के महापुरुषों के जीवन-चरित, उनके जीवन-दर्शन एवं उनके जीवन की कुछ प्रेरक घटनाओं का उल्लेख है। इस अध्याय का प्रथम निबन्ध विभूति वन्दना सर्वप्रथम श्रीराधा को समर्पित है। लेखक ने श्रीराधा की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को सिद्ध करने हेतु ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से उद्धरण दिये हैं। श्रीकृष्णप्रिया राधाजी केवल इतिहास के पन्नों तक ही सीमित नहीं, अपितु आज भी चराचर जगत् की स्वामिनी एवं श्रीकृष्ण के अभिन्न अंग के रूप में विराजमान हैं।

तृतीय खण्ड—धर्म, दर्शन, संस्कृति, उत्सव, विज्ञान एवं मनोविज्ञान पर बड़े मूल्यवान एवं सारगर्भित 88 निबन्ध हैं। प्रथम निबन्ध भारतीय दर्शन की पूर्णता में लेखक लिखते हैं, 'भारत में पश्चिम की तरह दर्शन केवल बुद्धि-व्यायाम या वाणी-विलास मात्र नहीं, वरन् वह तो जीवन की सर्वोच्च साधना थी। भारत में दर्शन केवल मनोरंजन या बुद्धिरंजन का विषय न होकर जीवन की जीवन्त साधना का अंग

रहा है।' सूरदास की हृदय वीणा से निःसृत रामायण गीतिका, उपनिषद् की शिक्षा-प्रणाली, स्वतन्त्रता के सांस्कृतिक आधार, शक्तिपूजा का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन आदि बहुत निबन्ध रत्नों से परिपूर्ण यह सम्पूर्ण वाङ्मय समग्र है।

चतुर्थ खण्ड—'वेदान्त-दर्शन' की वैज्ञानिकता से अभिहीत है। इस खण्ड में ओबरायजी के प्रति लोगों द्वारा लिखित पावन स्मृतियाँ हैं और कुछ पत्र भी हैं, जिससे उनके महान् जीवन की झलकियाँ मिलती हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर 149 सारगर्भित निबन्ध हैं।

पंचम खण्ड का शीर्षक दिया गया है—गीता-दर्शन की सार्वभौमिकता। इसी खण्ड के प्रारम्भ में 'भगवान श्रीकृष्ण और गीता' पर प्रदत्त उनके कई व्याख्यान हैं। संक्षेप में सम्पूर्ण गीता पर छोटे-छोटे निबन्ध हैं। वर्तमान चारित्रिक संकटों में गीता हमारी कैसे सहायता कर सकती है और राष्ट्र के प्रति हमारी दृष्टि कैसी हो—इस पर चर्चा की गयी है।

इस ग्रन्थ के सम्पादक, परामर्शदाता एवं ग्रन्थ-निर्माण के सहयोगी—सभी प्रशंसा एवं सम्मान के योग्य हैं।

—स्वामी प्रपत्त्यानन्द

विवेक ज्योति अक्टूबर 2012

।।श्रीहरिः।।

कृष्ण-कुटीर, रतनगढ़ (राज.)

आदरणीय स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी,

सादर-सप्रेम नमस्कार। आपने डॉ. हरवंशलाल ओबराय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के जो तीन खण्ड प्रकाशित किये हैं उन्हें पढ़कर लगता है कि डॉ. ओबराय देश की दुर्लभ विभूति थे। आपने इनकी सामग्री का जिस प्रकार संकलन एवं संपादन किया है, इसके लिए आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूं, समझ में नहीं आता। किसी भी प्रकार का धन्यवाद मेरे हृदय की समस्त भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पायेगा।

सबसे पहले आपको खण्ड एक के संपादकीय के लिए अनेकानेक धन्यवाद देता हूं। आपने अपने संपादकीय में तीनों खण्डों को अच्छी तरह समझने की दृष्टि

प्रदान की है। कहना चाहिए, तीनों खण्डों में जो कुछ प्रकाशित हुआ है, उसका सार आपके संपादकीय में समाहित हो गया है। आपके संपादकीय को पढ़े बिना डॉ. ओबराय के व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त नहीं होती। आपने डॉ. ओबराय की जीवन-झांकी इस तरह प्रस्तुत की है, जैसे हम उनके जीवन को अपनी आंखों के सामने घटित होते हुए देख रहे हैं। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण भारतीय संस्कृति, सनातन धर्म, देशभक्ति, सामाजिक चेतना को जागृत करने में व्यतीत हुआ। उनका व्यक्तित्व जितना सरल, सौम्य एवं प्रभावकारी था, उनका कृतित्व भी उतना ही प्रखर, राष्ट्रीय चेतना को जगाने वाला, भारत की विभूतियों को उजागर करने वाला एवं भारत के विगत की उपलब्धियों पर प्रकाश डालने वाला सफल प्रयास रहा। उन्होंने पूर्ण निष्पक्षता से विश्व की समस्त विभूतियों के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित किये। उनका ज्ञान अथाह था। शायद ही कोई ऐसा विषय बचा हो, जिसके बारे में उनकी लेखनी न चली हो।

खण्ड एक में उन्होंने राष्ट्रीय समस्याओं एवं इतिहास पर अपने विचार प्रशंसनीय ढंग से प्रस्तुत किये हैं। इनको पढ़कर ज्ञात होता है कि जो लोग राष्ट्रीय समस्याओं एवं इतिहास पर अपने विचार प्रकट करते रहे हैं, वे संकुचित दृष्टि या पक्षपात पूर्ण ढंग से ऐसा करते हैं। डॉ. ओबराय की दृष्टि राष्ट्रीय समस्याओं को पूर्ण निष्पक्षता एवं निर्भीकता से देखती है। उसमें कहीं भी किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है। उनकी रचनाएं पाठक को राष्ट्रीय समस्याओं को गहराई से देखने की क्षमता प्रदान करती है।

दूसरे खण्ड में उन्होंने देश के संत-महात्माओं, साहित्यकारों, धर्मगुरुओं, समाज सुधारकों, भक्त-कवियों, क्रान्तिकारियों एवं विभिन्न क्षेत्रों के अग्रणीय महापुरुषों का बहुत ही सटीक एवं निष्पक्ष विवेचन किया है। इन्हें पढ़कर लगता है कि उनका जीवन देशवासियों को उस सत्य से परिचित कराने में ही समर्पित रहा, जिन लोगों ने संसार के समस्त सुखों का परित्याग कर मानवता के लिए ही अपने आपको समर्पित कर दिया था। उनका बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व पाठक को विमुग्ध कर देता है।

तीसरे खण्ड में धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-ज्ञान एवं मनोविज्ञान से सम्बन्धित गंभीर चिंतन एवं व्यापक दृष्टिकोण का दर्शन करते हैं। उन्होंने केवल अध्ययन के आधार पर ही अपने विचार व्यक्त नहीं किये। अध्ययन के साथ गंभीर चिंतन एवं मनन करके ही किसी विषय पर अपनी लेखनी चलायी। उन्होंने जो कुछ लिखा, उसका उद्देश्य केवल यही रहा कि विश्व भारत को तभी समझ सकता है, जब उसे भारतीय समाज के बहुआयामी जीवन के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो और जीवन के हर पहलू की प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो। वास्तव में डॉ. ओबराय ने

भारत के जिस उज्ज्वलतम स्वरूप को विश्व के सामने रखा है, वह पूर्णता लिए हुए है और भारत की संस्कृति, भारत के इतिहास, भारत के मनस्वी सुपुत्रों, भारत की एकात्मता और आध्यात्मिक एकता को प्रदर्शित करने वाला है। इन पुस्तकों को पढ़कर पाठक विस्मय-विमुग्ध हो जाता है। मुझे विश्वास है कि डॉ. ओबराय के ये ग्रंथ सदियों तक अपने शाश्वत स्वरूप के द्वारा पाठकों के विचारों को मानवता की सेवा के लिए प्रेरित करते रहेंगे। तटस्थता पाठक के मन में यह भाव पैदा करने में समर्थ होंगे कि भारत का सच्चा स्वरूप समझने के लिए आवश्यक है कि भारत के इतिहास को सही रूप में देखा जाए। उसका मूल्यांकन पूर्ण नष्टतता से किया जाए।

मैं आपको इन पुस्तकों के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूं। आपने इनके प्रकाशन करा जो स्तुत्य प्रयास किया है, वह आपकी अपूर्व क्षमता का दर्शन कराता है। आपका डॉ. ओबराय के प्रति जो समर्पण रहा, वह सर्वथा वंदनीय एवं विस्मित करने वाला है। इस युग में ऐसे शिष्य ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलते।

मैं पुनः पुनः आपके भगीरथ प्रयास को नमन करता हूँ। आप पूर्ण स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें, प्रभु से ही यही मंगलकामना करता हूँ।

अनेकानेक धन्यवाद,

विनीत

सीताराम महर्षि

श्रद्धेय स्वामीजी,

सादर हरि स्मरण।

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र तीनों खण्ड किताब मैंने पढ़ी। आपके प्रयास एवं धैर्य के द्वारा एक अनुपम कृति भारतीय साहित्य ज्ञान भण्डार में जुड़ सकी इसके लिये आपको साधुवाद देते हुए अत्यंत ही हर्ष की अनुभूति होती है। भारतीय दर्शन एवं मनीषियों की जीवनगाथा का जो दिग्दर्शन आपने पूज्यवर के साहित्य से संग्रह किया है वो न केवल धार्मिक चेतना वरन् राष्ट्रीय भावना एवं मानवता को भी एक उत्कृष्ट सोपान पर ले जाने में सक्षम होगा जिसकी आज अत्यंत ही जरूरत है।

आपका प्रयास इस प्रकार ही चलता रहे एवं पल्लवित होता रहे जिससे हम जैसों की प्रेरणा का एक माध्यम बना रहे ऐसी सर्व समर्थ प्रभु से प्रार्थना है। परम

पूजनीय स्वामी श्री ईश्वरानंदगिरिजी एवं परम पूज्य स्वामी संवित् सोमगिरिजी को मेरा शत-शत प्रणाम जिनके आशीर्वाद से ही आप यह कर सकने में सक्षम हुए हैं।

डॉ. के.के. देवड़ा
पुरुलिया (पश्चिम बंगाल)

पुस्तक समीक्षा

भारत के विख्यात संस्कृति-मनीषी डॉ. हरवंशलाल ओबराय (1925-1983) के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर 2,688 पृष्ठों में (पांच खण्ड), स्वामी संवित् सुबोधगिरि द्वारा इसका संपादन एवं संकलन उनकी 36 वर्षों की असाध्य तपस्या का प्रतिफल है। स्वामीजी ने इसमें डॉ. ओबराय की अमृतवाणी का नवनीत पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है।

प्रो. ओबराय का जीवन भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा राष्ट्र के प्रति पूर्ण समर्पण की अपूर्व गाथा है। वह रावलपिण्डी (बप्पा रावल की जन्मस्थली) में जन्मे, पले तथा सुशिक्षित हुए। संघ के सम्पर्क में आये। देशभक्ति तथा राष्ट्रप्रेम की ज्वाला जगी। भारत-विभाजन पर वहाँ फँसे हिंदुओं की सहायता में लग गये। दिल्ली में आकर एम.ए. दर्शन तथा हिन्दी में प्रथम श्रेणी में किया।

महाविद्यालय में शिक्षण के साथ समाजसेवा को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया। संस्कृति तथा दर्शन पर अनेक विश्वविद्यालयों में व्याख्यान दिये। सन् 1982 में मद्रास विश्वविद्यालय में 'इंफ्ल्युलेन्स ऑफ़ इण्डियन कल्चर ऑन प्री-इस्लामिक अरेबिया'–जैसे दुरूह विषय पर व्याख्यान देकर 'डी.लिट्.' की उपाधि प्राप्त की। भारतीय-संस्कृति तथा दर्शन पर निर्भीक होकर विश्व के 106 देशों में भारतीय दृष्टिकोण को रखा। सन् 1965 में उन्होंने बाबू जुगल किशोर बिड़ला के सहयोग और परामर्श से राँची में '**संस्कृति विहार**' **(एकेडमी ऑफ़ इण्डियन कल्चर)** नामक शोध-संस्थान की स्थापना की। अगले 18 वर्षों तक इसके निदेशक रहे। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के दो बार राष्ट्रीय अध्यक्ष चुने गये। वे आप बाबा साहिब आपटे स्मारक समिति से भी सम्बद्ध थे और उसके पूर्वाञ्चल प्रमुख रहे। दुर्भाग्यवश 19 सितम्बर, 1983 को रायपुर स्टेशन के पास दुर्घटना से उनका शरीर पूरा हुआ। संक्षेप में उनके प्रेरक तथा शोधपूर्ण व्याख्यान, राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत जीवन, समाजसेवी वृत्ति, सम्पूर्ण छोटानागपुर क्षेत्र में वनवासियों के

बीच कार्य, सदैव देश की युवा पीढ़ी का मार्गदर्शन करते रहेंगे। वह सही अर्थों में 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय संस्कृति के मंत्रद्रष्टा थे।

प्रबुद्ध संपादक ने **डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र** के प्रथम खण्ड में डॉ. ओबराय के (भारत की) 'राष्ट्रीय समस्याओं और इतिहास' पर उनके विचारों का संकलन किया है। इसका शेष भाग 'परिशिष्ट एक' के रूप में खण्ड चार में (पृ. 504-547) दिया गया है। विभाजन के पश्चात् डॉ. ओबराय ने भारतीय गगन में विकराल रूप से उभरती तीन अंतरराष्ट्रीय समस्याओं—1. भारत में ईसाइयत फैलाने का भौंडा तथा बीभत्स ढंग से प्रचार, 2. इसलाम द्वारा धर्मांतरण के कुप्रयास तथा 3. कम्युनिस्टों द्वारा भारतीय संस्कृति एवं दर्शन को विकृत, भ्रमित करने के षड्यन्त्रों से भारत के प्रबुद्ध जनमानस को अपनी ओजस्वी वाणी तथा लेखों से अवगत कराया है। उन्होंने प्रमाण सहित केरल से नागालैण्ड तक ईसाइयत के कुकर्मों का वर्णन किया है। इसी भाँति मुसलमानों द्वारा कुप्रचार तथा 1957 के पश्चात् केरल में कम्युनिस्ट शासन स्थापित हो जाने से उनके संस्कृति एवं राष्ट्रविरोधी क्रियाकलापों का वर्णन किया है। इस खण्ड में यह भी बतलाया गया है कि डॉ. ओबराय आरामकुर्सी पर बैठकर लिखने वाले व्यक्ति न थे बल्कि प्रत्यक्ष संघर्षरत महारथी भी थे। उन्होंने विदेशी पादरियों के निष्कासन के लिए कार्य किया तथा धर्मांतरण के विरुद्ध शुद्धि-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया।

डॉ. ओबराय ने इतिहास को 'राष्ट्र का चक्षु' बतलाया। उन्होंने अपनी व्याख्यानमाला के द्वारा इतिहास की अनेक समस्याओं का निराकरण तथा प्रचलित भ्रांतियों तथा विकृतियों को हास्यास्पद बताया। कई मूल समस्याओं, जैसे–आर्यों का आदि देश, उनके काल आदि को तर्क तथा तथ्यों की कसौटी पर स्पष्ट किया। डॉ. ओबराय ने भारत की संस्कृति के विश्वव्यापी स्वरूप तथा देन को समझने के लिए चार दुरूह आवरणों को हटाकर उनके रहस्यों को समर्थन के लिए इतिहासकारों की 'सोच' को नवीन दिशा दी। उन्होंने ये चार आवरण बताये—1. ईसा से पूर्व का यूरोप, 2. इसलाम से पूर्व का अरब, 3. कोलम्बस से पूर्व का अमेरिका तथा 4. फिलीप से पूर्व का फिलीपाइन। वह स्वयं भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा इसके सही स्वरूप का दिग्दर्शन कराने अनेक देशों में गये। खण्ड के अन्तिम भाग में देश-विदेश में डॉ. ओबराय को प्राप्त अनेक चित्रों, मूर्तियों को प्रकाशित कर उसकी विश्वसनीयता को पुष्ट किया गया है।

'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' ग्रन्थमाला के दूसरे खण्ड में डॉ. ओबराय द्वारा समय-समय पर दिए गए भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अग्रणी महापुरुषों के

व्यक्तित्व तथा कृतित्व का गहन विवेचन किया गया है। इसमें लगभग 60 महान् पुरुषों के कार्यों की समीक्षा की गई है। इसके अलावा खण्ड चार के 'परिशिष्ट द्वितीय' में लगभग आधा दर्जन अन्य व्यक्तियों के जीवन को उभारा गया है। इसमें से कुछ लेख 1958-1860 के दौरान डॉ. ओबराय द्वारा तत्कालीन प्रसिद्ध समाचार-पत्रों –*'वीर प्रताप', 'वीर अर्जुन'* तथा *'मिलाप'* में लिखे गए थे।

प्राचीन काल से भारत ऋषियों, सन्तों, साधकों, चिन्तकों, विचारकों, लेखकों, वैज्ञानिकों एवं साहित्यकारों की भूमि रहा है। निस्सन्देह विश्व में कोई भी ऐसा देश नहीं है जहाँ महान् पुरुषों की इतनी अविरल ज्ञान-शक्ति तथा भक्ति दिखलाई देती हो जितनी भारत में। डॉ. ओबराय ने महर्षि दधीचि के अपूर्व बलिदान से वर्तमान तक अनेक महापुरुषों के योगदान का संक्षिप्त विवरण दिया है। इन सभी महान् पुरुषों ने विभिन्न क्षेत्रों में अपने युग की चुनौतियों को स्वीकार किया तथा भारतीय जनमानस का मार्गदर्शन किया।

सामान्यतः ये सभी अपने युग के प्रतिनिधि थे।

डॉ. ओबराय ने जहाँ प्राचीन काल के दिव्य ज्ञानी वाल्मीकि, राष्ट्रदर्शन के व्याख्याता महर्षि वेदव्यास, भगवान् बुद्ध, जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी, षड्दर्शन आचार्यों के दिये ज्ञान का सूक्ष्म विवेचन किया; वहीं मध्यकाल में दक्षिण तथा पश्चिम भारत के सन्तों, उत्तर तथा पूर्व के भक्तों तथा पंजाब के गुरुओं की वाणियों की चर्चा की। साथ ही महाकवि कालिदास से लेकर वर्तमान साहित्यकारों के जीवन पर प्रकाश डाला। आधुनिक काल के धर्म तथा समाज-सुधारकों, जैसे–राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, बंकिमचन्द्र, स्वामी रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक, श्री गुरुजी–जैसे महान् पुरुषों की देन को बताया। विद्वान् लेखक ने महाराजा विक्रम से लेकर राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, महाराजा रणजीतसिंह से लेकर भारत के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के सेनानी लाला लाजपत राय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार ऊधमसिंह आदि पर प्रकाश डाला। इन सभी महान् पुरुषों ने देश की सांस्कृतिक एकता को अक्षुण्ण बनाए रखा।

'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' के तृतीय खण्ड में संस्कृति, दर्शन तथा विज्ञान—जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचारों के सन्दर्भ में चिन्तन किया है। उन्होंने दर्शन के क्षेत्र में भारत को 'विश्व का शिरोमणि' बताया है। उन्होंने यह निश्चयपूर्वक तथा तथ्यात्मक रूप से बतलाया है कि दर्शन का जन्म जब यूनान में छठी शताब्दी ई. पूर्व बताया जाता है, तब भारत में दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर 'मध्याह्न काल' था। उन्होंने भौतिकवादी पाश्चात्य जगत् के सम्मुख भारत

में इसे 'जीवन की सर्वोत्तम साधना' कहा। वेद को विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ कहा। भारतीय धर्म तथा दर्शन का वैशिष्ट्य बताते हुए भारत के षड्दर्शनों के सार के साथ चार्वाक, बौद्ध तथा जैन-दर्शन की चर्चा की। उन्होंने *'ओल्ड टेस्टामेन्ट'* व *'न्यू टेस्टामेन्ट'* का वर्णन करते हुए धर्मांध पादरियों की कटु आलोचना की। उन्होंने चैतन्य की तीन मौलिक शक्ति के रूप में ज्ञान, भक्ति तथा कर्म अथवा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की धारणा का विस्तार से वर्णन किया है। शिव, गणेश, राम और कृष्ण को भारत के राष्ट्रीय पुरुष तथा *रामायण* तथा *महाभारत* को राष्ट्रीय महाकाव्य कहा। डॉ. ओबराय ने विज्ञान तथा मनोविज्ञान को भारत की विश्व को आदि देन बतलाया। डॉ. ओबराय ने विदेशों में अपने व्याख्यानों में भारतीय संस्कृति के विश्वव्यापी प्रसार का सप्रमाण वर्णन किया है।

खण्ड चार में डॉ. ओबराय ने 'वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता' पर तात्त्विक तथा व्यावहारिक आधार पर इसे चिर-पुरातन तथा चिर नवीन कहा। उन्होंने वेदोपनिषद्, पुराण, स्मृत्यादि के आधार पर भारतीय दर्शन की मूल मान्यताओं, समस्याओं के साथ उसकी पूर्णता पर गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत किया है। उन्होंने दार्शनिक विषयों—जड़वाद, द्वैतवाद, चैतन्यवाद, जीव-रहस्य, मृत्यु-रहस्य तथा सृष्टि की अत्यन्त सरल व्याख्या की है।

डॉ. ओबराय ने अपने प्रवचनों में हिन्दू-धर्म तथा संस्कृति के विचारों—आत्मा, कर्म-सिद्धान्त, अनेकता में एकता आदि तत्त्वों का विवेचन किया। उन्होंने भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य विज्ञान अथवा मार्क्सवादी विश्लेषण की तुलनात्मक व्याख्या की। डॉ. ओबराय ने भारत की राष्ट्रीय एवं सन्त-परम्परा तथा सेमिटिक विचार-परम्परा का स्पष्ट अन्तर अनेक उदाहरण देते हुए बतलाया। आधुनिक अनेक समस्याओं की कारणमीमांसा करते हुए उन्हें मानव-प्रकृति के विरुद्ध तथा अप्रासंगिक बताया है तथा अनेक राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान भारतीय परम्परा में ही बताया है।

'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' के खण्ड पाँच में 'गीता दर्शन की सार्वभौमिकता' पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। विद्वान् लेखक तथा महान् चिन्तक ने *श्रीमद्भगवद्गीता* को 'राष्ट्र की आत्मा' तथा विश्व में भारत की पहचान बतलाया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को जब यह ज्ञान दिया गया, तब न कोई बाइबिल का ज्ञान था, न ही कुरान का। उन्होंने बतलाया कि सन् 1776 में प्रथम बार इसका अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ। तभी से यूरोप की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ और शीघ्र ही यूरोप, अमेरिका तथा विश्व के श्रेष्ठतम दार्शनिकों एवं अन्य विद्वानों का यह सर्वश्रेष्ठ पठनीय ग्रन्थ बन गया। डॉ. ओबराय ने गीता की विश्वव्यापी देन का सविस्तार वर्णन किया।

उन्होंने गीता के प्रत्येक अध्याय को लेकर इसकी व्याख्या की। भारत राष्ट्र में तथा भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इसके योगदान की चर्चा की। उन्होंने इसे मानवता के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ बतलाया। गीता को ज्ञान, भक्ति तथा कर्म का अद्भुत समन्वय बताया। साथ ही वर्तमान भारत की समस्याओं का समाधान तथा विश्व के कल्याण तथा शान्ति का पथ बतलाया।

निस्सन्देह महामनीषी डॉ. हरवंशलाल ओबराय के विचारों तथा चिन्तन को समर्थन का यह श्रेष्ठतम प्रयास है। इसके लिए स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी की साधना अद्भुत है। वह कोटिशः बधाई के पात्र हैं। उनकी यह साधना दिव्य तथा स्तुत्य है। देश-विदेश के पुस्तकालयों के लिए यह ग्रंथमाला संग्रहनीय है। भारत के प्रत्येक प्रबुद्ध पाठक को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

—डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल
अखिल भारतीय इतिहास संस्करण संकलन योजनीक राष्ट्रीय अध्यक्ष
सेवानिवृत्त प्रोफेसर, इतिहास-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय;
आवास : 6/1277-ए, माधवनगर, सहारनपुर-247001 (उ.प्र.)
(**इतिहास दर्पण :** अंक 18(2) विजयादशमी, 2013; **जाह्नवी** मासिक के अप्रैल, 2014 तथा **बप्पा रावल** मासिक के जनवरी, 2014 के अंक में प्रकाशित)

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

संघ-प्रवाह में से प्रगटा एक बौद्धिक कर्मयोगी

सच, मैं स्वामी संवित् सुबोधगिरि का ऋणी हूं कि उन्होंने पांच खण्डों में 'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' प्रकाशित करके संघप्रवाह के एक देदीप्यमान बौद्धिक रत्न की स्मृति को झाड़-पोंछकर ताजा कर दिया। अंग्रेजी में एक कहावत है–'आउट आफ साइट, आउट आफ माइन्ड' (आंखों से ओझल तो स्मृति से गायब)। 89 वर्ष से अनवरत बह रहा संघ-प्रवाह असंख्य ऐसे तेजस्वी अंतःकरणों की अखंड मालिका है जिन्होंने कर्म के क्षेत्र में, बौद्धिकता के क्षेत्र में असामान्य कर्तृत्व को प्रगट किया और जो या तो प्रसिद्धि पराङ्मुखता में खो गये या विस्मृति के गर्त में समा गये। नामों की सूची इतनी लम्बी है कि आज उन सब नामों को खोज पाना भी संभव नहीं रहा है। डॉ. हरवंशलाल ओबराय भी ऐसे ही नवरत्नों की सूची में बहुत ऊंचा स्थान पाने के अधिकारी हैं। विस्मृति की

धूल झाड़ने के बाद मुझे स्मरण आता है कि साठ के दशक में अ.भा. विद्यार्थी परिषद् के अध्यक्ष के नाते वे बहुत चर्चित थे। लम्बे पंजाबी कोट और संकरी मोरी के पाजामे में जब वे मंच पर आते तो पहली नजर में उनका व्यक्तित्व पंडाल या हॉल में एकत्र विशाल श्रोता-समूह को बहुत प्रभावित नहीं करता था, पर जब उनका विद्वत्तापूर्ण ओजस्वी, धाराप्रवाह वक्तृत्व आगे बढ़ता तो सभी श्रोता मंत्रमुग्ध रह जाते। उन दिनों विद्यार्थी परिषद् के अ.भा. अध्यक्ष पद के लिए चयनित होना स्वयं में बहुत बड़ी बात थी। परिषद् का संगठन देशभर में बहुत प्रभावी स्थिति प्राप्त कर चुका था।

सन् 1925 में पाकिस्तान में छूट गये रावलपिंडी में जन्मे हरवंशलाल ओबराय की जीवनयात्रा फूलों की सेज जैसी सुगम नहीं रही। अपने माता-पिता की दस संतानों में वे तीसरे नम्बर पर थे। बाल्यकाल में ही संघ-प्रवाह का अंग बन गये। रावलपिंडी में ही स्नातक तक शिक्षा पाई, साथ ही संघ के द्वितीय वर्ष प्रशिक्षित कार्यकर्ता की स्थिति में पहुंच गये। युवावस्था में प्रवेश करते ही देश विभाजन का वज्रपात झेलना पड़ा। अपने क्षेत्र से अंतिम हिन्दू सिख को सुरक्षित बाहर ले आने का कर्तव्य पूरा करके ही खंडित भारत की गोद में शरण ली। कुछ दिन मेरठ में बिताकर दिल्ली को आगे की पढ़ाई का केन्द्र बनाया। दर्शनशास्त्र और हिन्दी में एमए करके पंजाब के कई विद्यालयों में शिक्षण कार्य करके जालंधर के डीएवी कालेज में दर्शनशास्त्र विभाग के अध्यक्ष पद पर पहुंच गये। विद्यार्जन, शिक्षक कर्म के साथ-साथ संघ-साधना भी अखंड चलती रही। 1948 में संघ-सत्याग्रह करके जेल गये तो 1975-77 के आपातकाल में कुख्यात 'मीसा' के अन्तर्गत उन्नीस महीने जेल में काटे। ज्ञान-साधना और राष्ट्र-साधना के संगम का उच्च उदाहरण प्रस्तुत किया।

अपने इन्हीं सब गुणों के कारण प्रो. हरवंशलाल अ.भा. विद्यार्थी परिषद् के अ.भा. अध्यक्ष पद पर 1960-61, 1961-62, दो वर्ष तक लगातार अभिषिक्त हुए। उनके पाण्डित्य, ओजस्वी धाराप्रवाह वक्तृत्व की ख्याति चारों ओर फैल गयी थी, जिससे आकर्षित होकर यूनेस्को ने उन्हें यूरोप और अमरीका आदि देशों में भारतीय दर्शन, संस्कृति और इतिहास पर भाषणमाला देने के लिए आमंत्रित किया। और जीवन के अंत तक उनकी विदेशयात्रा का यह क्रम चलता रहा। कुल मिलाकर 106 देशों की उन्होंने यात्रा की, वहां के विश्वविद्यालयों में और बौद्धिक मंचों पर उन्होंने अपने भाषणों की गहरी छाप छोड़ी। 1963 में अमरीका में स्वामी विवेकानन्द के जन्मशताब्दी समारोह में उनके शिकागो व्याख्यान (1893) पर डॉ. ओबराय के भाषण ने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। वहां प्रसिद्ध उद्योगपति बिड़ला परिवार का एक सदस्य चन्द्रकान्त बिड़ला भी श्रोताओं

में उपस्थित थे। इस भाषण को सुनकर वे चमत्कृत रह गये। उनके पितृतुल्य सेठ जुगल किशोर बिड़ला ने हरवंशलालजी की प्रतिभा को पहचाना। उन्होंने रांची में अपने बीआईटी नामक संस्थान में दर्शन-मानविकी में स्वतन्त्र संकाय की स्थापना करके हरवंशलालजी को उस संकाय का अध्यक्ष बना दिया और इस प्रकार छोटानागपुर क्षेत्र उनका स्थायी कार्यक्षेत्र बन गया। इस क्षेत्र में विदेशी ईसाई मिशनरियों के द्वारा भोले-भाले वनवासियों के मतान्तरण का कार्य तेजी पर था। हरवंशलालजी के योद्धा मन ने इसे अपने लिए चुनौती माना और मतान्तरण की गति को अवरुद्ध करने के लिए ईसाई पादरियों के विरुद्ध खम ठोंक कर खड़े हो गये। बौद्धिक धरातल पर चुनौती देने के साथ-साथ उन्होंने मैदान में उतर कर भी उन्हें ललकारा। धर्मप्राण श्री जुगल किशोर बिड़ला ने उन्हें मतान्तरण की चुनौती के विरुद्ध रांची में स्व. आचार्य रघुवीर के सरस्वती विहार के अनुकरण पर 'संस्कृति विहार' नामक संस्थान स्थापित करने की प्रेरणा एवं आर्थिक सहयोग प्रदान किया। अप्रैल 1964 में उन्होंने संस्कृति विहार की स्थापना का उपक्रम आरंभ किया। वहां अध्ययन, प्रचार एवं शोध की व्यवस्था की। 20 मई, 1965 को मां आनन्दमयी की अध्यक्षता एवं वृन्दावन के प्रज्ञाचक्षु सन्त स्वामी शरणानन्दजी के उद्‌बोधन के साथ काशी के मूर्धन्य विद्वान महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज ने 'संस्कृति विहार' का विधिवत् उद्‌घाटन किया। डॉ. हरवंशलाल ने 19 सितम्बर 1983 को रायपुर स्टेशन पर एक दुर्घटना में अपनी अकाल मृत्यु तक 18 वर्ष संस्कृति विहार के निदेशक का दायित्व निर्वाह किया।

स्वयं बहुपाठी विद्वान होते हुए भी उनका विश्वास था कि समाज में गौरवभाव जगाने के लिए मोटे-मोटे ग्रंथों की रचना से अधिक चित्र-प्रदर्शनियों का योगदान रहता है। इसलिए उन्होंने अनेक चित्र प्रदर्शनियों का निर्माण किया। जैसे 'हिमालय रक्षा प्रदर्शनी, श्री अरविन्द घोष प्रदर्शनी, शिवाजी प्रदर्शनी, वनवासी जीवन-परम्परा प्रदर्शनी, सात्त्विक आहार-विहार प्रदर्शनी आदि अनेक प्रदर्शनियों की रचना की। वे अपनी विदेश यात्राओं में भी ऐसी किसी प्रदर्शनी को साथ ले जाते थे। संस्कृति विहार में भी उन्होंने लगभग 3000 चित्रों, प्रतिमाओं एवं कला-कृतियों का देश-विदेश से लाकर संग्रह किया था। उनके सामने सबसे बड़ी चुनौती थी भोले-भाले वनवासियों के छलपूर्वक मतान्तरण को रोकने की। उसके लिए उन्होंने हिमाचल प्रदेश की शांता कुमार सरकार के आमंत्रण पर विदेशी पादरी निष्कासन अभियान चलाया। 19 दिसम्बर 1965 को संस्कृति विहार की ओर से प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री को एक ज्ञापन दिया। 2 अक्टूबर 1968 को प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी को पुनः एक ज्ञापन दिया। रांची के रोमन कैथोलिक चर्च को ब्रिटिश सरकार ने 1916 में 46 एकड़ भूमि का पट्टा दे दिया था। उसकी

अवधि पूरी होते ही बिहार सरकार से मांग की कि भूमि वापस ली जाए। रांची में एक पादरी थोटेंकल ने भगवावस्त्र धारण करके स्वयं को स्वामी नरेन्द्रानन्द घोषित कर दिया और दिव्य ज्योति आश्रम में शिक्षा के बहाने वनवासी बच्चों का मतान्तरण करने लगा। डॉ. हरवंशलाल ने उसका भण्डाफोड़ किया।

रांची ही 'रामकथा की उत्पत्ति और विकास' नामक ग्रंथ के लेखक फादर कामिल बुल्के का केन्द्र था। फादर बुल्के ने प्रस्थापना की कि छोटानागपुर ही राक्षसों का निवास स्थान था और रावण ओरांव जाति का राजा था। डॉ. हरवंशलाल ने इस भ्रामक प्रचार के लिए फादर बुल्के को सार्वजनिक मंच पर चुनौती दी, किन्तु बुल्के में उसे स्वीकार करने का साहस नहीं हुआ। इसी प्रकार प्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखक राहुल सांकृत्यायन ने 'वोल्गा से गंगा' नामक पुस्तक प्रकाशित की तो हरवंशलाल ने दिल्ली में राहुलजी की उपस्थिति में ही उनकी स्थापना का खंडन करते हुए कहा कि राहुलजी को 'वोल्गा से गंगा' पुस्तक को समुद्र में फेंक कर 'गंगा से वोल्गा' शीर्षक पुस्तक लिखनी चाहिए।

अपने अगाध पाण्डित्य, अद्‌भुत स्मरण शक्ति, ओजस्वी धाराप्रवाह वक्तृत्व के कारण डॉ. हरवंशलाल रांची क्षेत्र में भारतीय संस्कृति और देशप्रेम के निर्भीक प्रवक्ता के रूप में बहुत लोकप्रिय हो गये। उनके इन्हीं गुणों ने आकर्षित किया 18 वर्ष के एक मारवाड़ी किशोर सन्तोष लाठ को। सन्तोष लाठ को संस्कृति और राष्ट्र के प्रति गौरवभाव अपने परिवार और संघ-परिवार की पृष्ठभूमि से प्राप्त हुआ था, पर रांची का उस समय का बौद्धिक वातावरण इन भावनाओं से शून्य था। संस्कृति और इतिहास की हर समय आलोचना करता रहता था। सन्तोष का आहत मन डॉ. हरवंशलाल की ओर आकृष्ट हुआ और उसने स्वयं को उनके शिष्य रूप में निवेदित कर दिया। उसकी इच्छा थी कि डॉ. हरवंशलाल की विद्वत्ता पुस्तक रूप में देश को प्राप्त हो अतः उसने शर्त लगायी कि डॉ. हरवंशलाल प्रतिदिन दो घंटा अपने भाषणों को लेखबद्ध करेंगे। पर वैसा होना नहीं था, क्योंकि हरवंशलालजी किताबी पाण्डित्य से अधिक बौद्धिक योद्धा थे। पर फिर भी सन्तोष लाठ धैर्यपूर्वक उन प्रकाशित, अप्रकाशित और मौखिक भाषणों के एकत्रीकरण में जुटा रहा। इसी बीच उसकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति ने उसे संन्यास पथ पर बढ़ा दिया और स्वामी संवित् सोमगिरिजी से दीक्षा पाकर वह 'संवित् सुबोधगिरि' बन गया। किन्तु डॉ. हरवंशलाल ओबराय के प्रति अपने गुरु ऋण से उऋण होने के लिए उनकी ज्ञान निधि को संकलित करने के कार्य में वह अनवरत लगा रहा। अन्ततः हरवंशलालजी के तीन छोटे भाइयों—डॉ. मदनलाल, श्री बृजभूषण व चन्द्रप्रकाश ओबराय के सहयोग से 36 वर्ष लम्बे परिश्रम के बाद पांच खण्डों में डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र को प्रकाशित करने में सफल हुआ। सुबोधगिरिजी का कहना है कि यह

संकलन की इतिश्री नहीं है। अभी बहुत कुछ शेष है जिसमें वे लगे हुए हैं। 2010 में इन पांच खण्डों के प्रकाशन के बाद सुबोधगिरिजी ने अनेक छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में डॉ. हरवंशलाल के विचारों का संकलन प्रकाशित किया है।

ओबराय समग्र, प्रथम खंड में 'राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास' विषय पर केन्द्रित रचनाएं एकत्र की गयी हैं। इस खंड में ईसाई समस्या के विवेचन के अलावा विदेशों में भारतीय संस्कृति की यात्रा पर कई लेख हैं। डॉ. ओबराय की अमरीका यात्रा का वर्णन भी मिलता है। 'महापुरुषः व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' शीर्षक, खण्ड 2 में प्राचीन ऋषियों-मुनियों-आचार्यों से लेकर मध्यकालीन सन्तों एवं आधुनिक भारतीय मनीषियों की जीवन झांकी उपलब्ध है। खण्ड तीन में 'धर्म-दर्शन-संस्कृति–उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान' जैसे गंभीर विषयों का सरल-सहज शैली में विवेचन किया गया है। खण्ड चार में 'वेदान्त दर्शन' तो खण्ड पांच में 'गीता-दर्शन की सार्वभौमिकता' का प्रतिपादन किया गया है। 2688 पृष्ठों में समाहित यह अमूल्य बौद्धिक सामग्री डॉ. हरवंशलाल ओबराय की ज्ञान-मंजूषा को हमारे सामने खोल देती है। यह यात्रा और आगे बढ़ती यदि 1983 में एक दुर्घटना में उनकी अकाल मृत्यु न हुई होती तो। वे हस्तरेखा शास्त्र विशेषज्ञ भी थे। अपनी मृत्यु के एक सप्ताह पूर्व ही उन्होंने अपने प्रिय शिष्य सन्तोष लाठ (अब संवित् सुबोधगिरि) और अपनी हस्तरेखाएं देखकर भविष्यवाणी कर दी थी कि अब उनकी जीवन यात्रा पूरी हो रही है, किन्तु मृत्यु के डेढ़ वर्ष पूर्व 1982 में 'अरेबिया पर भारतीय प्रभाव' शीर्षक से अंग्रेजी शोध निबंध के आधार पर उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय से डी.लिट. की डिग्री लेकर अपनी बौद्धिक यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव पार कर लिया था।

—देवेन्द्र स्वरूप
(प्रधान सम्पादक) पाञ्चजन्य
27 अगस्त, 2014
7 सितम्बर, 2014, पाञ्चजन्य

विद्वान लेखक का अनुपम संकलन

सम्पूर्ण विश्व में फैले हिन्दू-संस्कृति के पदचिह्नों को खोजने में दीवान चमनलाल की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दू अमेरिका' में उत्तर और दक्षिण अमरीका के हिन्दू शासकों का अकाट्य प्रमाणों के

साथ विवरण दिया गया है। 'इण्डिया द मदर ऑफ अस आल' में उन्होंने अन्य देशों में हिन्दू संस्कृति की छाप का विश्लेषण किया है। श्रद्धेय आचार्य श्रीराम शर्मा ने 'समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान' पुस्तक में पूरी दुनिया में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रभाव को दर्शाया है। आचार्य रघुवीर ने भी अपना पूरा जीवन दुनिया भर में घूमने और वहां मौजूद हिन्दू संस्कृति के चिह्नों को एकत्रित करने में लगा दिया। इतिहासकार पुरुषोत्तम नागेश ओक तथा डॉ. शरद हेबालकर ने भी इसी दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

इन्हीं के साथ एक और विद्वान हैं जिन्होंने विश्व-भ्रमण करते हुए परिश्रम पूर्वक यत्र-तत्र बिखरे हिन्दू संस्कृति के प्रतीकों का संग्रह किया और प्रमाणित किया कि एक समय सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति और जीवन-मूल्यों का यशोगान होता था। स्व. डॉ. हरवंशलाल ओबराय ने अपने जीवन-काल में 106 देशों की यात्रा की तथा सभी देशों में हिन्दू संस्कृति के अमिट-प्रभाव का साक्षात् अनुभव किया। उक्त यात्राओं में मिले साक्ष्यों की उन्होंने देश के प्रमुख नगरों में प्रदर्शनी भी आयोजित की तथा कई आलेख भी प्रकाशित किये। इन अमूल्य प्रस्तुतियों व अन्य विषयों पर प्रकाशित डॉ. ओबराय के लेखों को हाल ही में 'ओबराय समग्र' के रूप में प्रकाशित किया गया है। यह प्रशंसनीय कार्य बीकानेर के **मानव प्रबोधन प्रन्यास** ने किया है, जो नगर के प्रसिद्ध 'शिव मठ' का ही एक प्रकल्प है।

डॉ. ओबराय के सभी लेखों का संकलन व सम्पादन तीन खण्डों में उत्कृष्ट तरीके से किया गया है। पहले खण्ड में इतिहास विषयक तथा राष्ट्रीय समस्याओं से सम्बन्धित लेख हैं। 'मकर संक्रान्ति' के लेख में डॉ. ओबराय ने बताया है कि दो हजार वर्ष पूर्व यह पर्व 25 दिसम्बर को पड़ता था और ईसाइयों ने इसे चुरा कर 'क्रिसमस' बना दिया, जबकि ईसा का जन्म इस दिन हुआ ही नहीं था। 'विक्रम-संवत्' का महत्त्व बताते हुए उन्होंने प्रतिपादन किया है कि कालगणना पूरी दुनिया को भारत ने ही सिखायी। इसी खण्ड में श्री ओबराय ने यूरोपीय देशों में भारतीय संस्कृति के अभी भी विद्यमान स्मारकों का वर्णन किया है। इनमें पुष्ट साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध किया गया है कि उज्बेकिस्तान वह प्रदेश है, जहां जल-प्रलय के समय मनु एवं उनके साथियों ने शरण ली थी। इसी खण्ड के दो लेखों में बताया गया है कि आज से तीन हजार वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड में भी भारतवंशियों का शासन था और यह प्रदेश भी वृहत्तर हिन्दू राष्ट्र का अंग था।

ओबराय समग्र के द्वितीय खण्ड में भारत के महापुरुषों की जीवनियाँ हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक के लगभग साठ श्रेष्ठ पुरुषों के जीवन पर एक नई दृष्टि से लेखक ने प्रकाश डाला है। महर्षि दधीचि, महाकवि वाल्मीकि,

वेदव्यास, बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य के साथ-साथ स्वामी विवेकानन्द, श्री गुरुजी, नेताजी सुभाष, लोकमान्य तिलक, एकनाथ रानाडे सरीखे भारत के सपूतों के व्यक्तित्व व कृतित्व को भी इसमें समाहित किया गया है। स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनि निवेदिता तथा श्री अरविंद की शिष्या 'श्री माँ' का जीवन परिचय विशेष रूप से पठनीय है।

अमृत मंथन—समग्र का तीसरा खण्ड भारतीय तत्त्व-ज्ञान के मंथन के पश्चात् निकले अमृत के समान है। इसमें हिन्दू दर्शन, रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता, धर्म-संस्कृति, विज्ञान एवं मनोविज्ञान पर विविध लेख हैं। अपने देश के प्रमुख पर्वों, यथा वर्षप्रतिपदा, वैशाखी, रामनवमी, गुरु पूर्णिमा, विजयादशमी आदि का भी संक्षिप्त महत्त्व इसी खण्ड में संकलित किया गया है। विज्ञान सम्बन्धी एक टिप्पणी में लेखक ने बताया है कि विज्ञान का जनक भारत है, भारत में ही विज्ञान की सभी शाखाओं का प्रादुर्भाव तथा विस्तार हुआ। रामायण पर प्रस्तुत अन्यान्य लेखों में से एक में विद्वान लेखक ने दावा किया है कि सम्पूर्ण विश्व में राम-कथा किसी-न-किसी रूप में लिखी गई है और इसलिये रामायण विश्व ऐक्य का आधार बन सकती है। इसी प्रकार दुनिया के अनेक देशों में योगेश्वर श्रीकृष्ण की आराधना पर भी एक महत्त्वपूर्ण आलेख इसी खण्ड में है। हिन्दू धर्म और संस्कृति के विविध आयामों को भी कुछ आलेख तथा टिप्पणियों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

तीनों खण्ड पठनीय एवं संग्रहणीय हैं।

ओबराय समग्र की छपाई व साज-सज्जा भी उच्च कोटि की है। शिव-मठ के अधिपति पूज्य स्वामी संवित् सोमगिरि के आशीर्वचन प्रत्येक खण्ड के प्रारम्भ में हैं तथा उनके योग्य शिष्य संवित् सुबोधगिरिजी महाराज ने प्रत्येक खण्ड की प्रस्तावना लिखी है। प्रथम खण्ड की सम्पादकीय में रूप में प्रस्तुत प्रस्तावना पढ़ने से पूज्य सुबोधगिरिजी की विद्वत्ता का परिचय मिल जाता है। वास्तव में उन्हीं का आदेश प्राप्त होने के बाद इस अमूल्य संग्रह को पढ़ने का अवसर मिला। प्रारंभ में तो व्यक्तिगत प्रसिद्धि के लिये प्रकाशित समझ कर इस संकलन को बिना देखे ही रख दिया गया था। सुबोधगिरिजी का संकेत मिलने के बाद इनकी खोज-बीन शुरू हुई।

अतः इन ग्रन्थों से परिचय कराने के लिये समीक्षा-लेखक स्वामी सुबोधगिरिजी का आभारी है। समग्र का द्वितीय खण्ड हिन्दू समाज के श्रद्धा केन्द्र संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री गुरुजी को तथा तृतीय खण्ड 'संवित् साधनायन' (अर्बुद-गिरि) के स्वामी ईश्वरानन्द गिरिजी महाराज को समर्पित है।

पाथेय कण, 16 मई, 2012

वेदान्त दर्शन और भगवद्गीता

हिन्दू संस्कृति के विश्वव्यापी प्रभाव को उजागर करने वाले शोधकर्ताओं में डॉ. हरवंशलाल ओबराय अग्रणी थे। दिल्ली और पंजाब विश्वविद्यालयों में अनेक वर्षों तक भारतीय संस्कृति एवं दर्शन शास्त्र का अध्यापन उन्होंने किया। अपने जीवन काल में 106 देशों की यात्राएं उन्होंने की तथा वहाँ के शैक्षणिक व अन्य संस्थानों में भारत की संस्कृति, हिन्दू धर्म तथा दर्शन को स्पष्ट करने वाले भाषण दिये। इसी के साथ उन देशों में मौजूद पुरातन हिन्दू संस्कृति के अवशेषों को संग्रहीत भी किया। मिशनरियों की ईसाईकरण की चुनौती का उत्तर देने के लिए उन्होंने राँची में 'संस्कृति विहार' की भी स्थापना की।

वर्ष 1983 में दिवंगत हुए श्री ओबराय का लेखन भी विस्तृत एवं बहुआयामी है। उनके लेख तथा वक्तृताओं का संग्रह '**डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र**' के रूप में बीकानेर के '**मानव प्रबोधन प्रन्यास**' ने प्रकाशित किया है। इस संकलन के तीन खण्ड तो एक वर्ष पूर्व ही छप चुके हैं तथा पाथेय कण में उनकी जानकारी भी आ चुकी है। शेष दो खण्ड हाल ही में प्रकाशित किये गये हैं।

समग्र का चौथा खण्ड 'वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता' शीर्षक से है। वेदान्त की वैज्ञानिकता सन्देह से परे है। फिर भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो इस विषय में काफी भ्रमित हैं। इस खण्ड में स्व. ओबराय के उन लेखों एवं वक्तृताओं का संकलन है जो भारतीय दर्शन एवं विपुल साहित्य से सम्बन्धित हैं। भारतीय दर्शन की तुलना में पूंजीवाद एवं साम्यवाद की मीमांसा भी की गई है। वेदान्त से जुड़े अन्यान्य विषयों का परिचय भी इस खण्ड में है। परिशिष्ट में राष्ट्रीय समस्याओं पर समय-समय पर प्रकट किये गये श्री ओबराय के विचारों को सम्मिलित करने से संकलन की उपयोगिता बढ़ गई है।

ओबराय समग्र का पाँचवाँ खण्ड अमृत-तुल्य 'भगवद्गीता' पर है। 'गीतादर्शन की सार्वभौमिकता' नाम से प्रकाशित यह खण्ड पंचम वेद—गीता की महनीयता का विश्लेषण करने वाला है। 'गीता' सचमुच में विश्व का एक अनुपम ग्रन्थ है। भारत के सभी महापुरुषों ने इससे प्रेरणा प्राप्त की है। विद्वत्ता की कसौटी भी हमारे यहाँ गीताभाष्य को माना गया। अर्थात् भगवद्गीता पर यदि किसी ने भाष्य लिखा है तभी उसे विद्वान समझा गया।

गीता के संकलन के इस पांचवें खण्ड में श्री ओबराय की लिखी गीता के प्रत्येक अध्याय की सरल व्याख्या के साथ इसके विश्वव्यापी प्रभाव तथा भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में इसकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। गीता में आये विविध विषयों की सांगोपांग व्याख्या भी इसमें है। सभी व्याख्या तर्क संगत एवं

मननीय हैं। परिशिष्ट में रामायण पर श्री ओबराय के लेखों को सम्मिलित किया गया है।

दोनों खण्ड पठनीय और ज्ञान के नये आयामों का दिग्दर्शन कराने वाले हैं। ग्रन्थों की छपाई एवं साज-सज्जा उत्कृष्ट है। स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी के सम्पादकीय ग्रन्थों के पठन-मनन की उत्सुकता तो जगाते ही हैं, साथ ही कई महत्त्वपूर्ण विषयों की भी मीमांसा करते हैं।

पाथेय कण, 16 अगस्त, 2012

राष्ट्रीय समस्या और समाधान

भीनासर (बीकानेर) के संन्यास आश्रम से दो और माणिक्य हाल ही में प्रकाशित हुए हैं। दोनों ही पूज्य स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी की कृतियां हैं। 'राष्ट्रीय समस्या और समाधान' पूर्व में प्रकाशित प्रथम संस्करण (2013 ई.) का परिवर्द्धित एवं परिमार्जित स्वरूप है। राष्ट्र के सम्मुख इस समय प्रमुख समस्या हमारे 'स्व' को, अपने-आप को, भूल जाने की है। पुस्तक के एक अध्याय 'भारत राष्ट्र की विशेषता और उसका भविष्य' में इसी समस्या पर विचार कर उसका समाधान प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त विदेश-नीति, पर्यावरण, गीता, गो-माता आदि विषयों पर भी मौलिक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक के प्रारम्भ में डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के पांचों खण्डों के सम्पादकीय दिये गये हैं। ये सम्पादकीय ही बड़े विचारोत्तेजक और समाधान-कारक हैं। पूज्य स्वामीजी की उत्कृष्ट लेखन शैली से ये जीवंत हो उठे हैं। भारतीय संस्कृति के उद्भट विद्वान् डॉ. ओबराय का संक्षिप्त जीवन एवं संस्मरण भी इस परिवर्द्धित संस्करण में सम्मिलित किये गये हैं। परिशिष्ट में पूज्य शंकराचार्य भारती कृष्णतीर्थजी तथा डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी जैसे विद्वानों के लेख भी सम्मिलित किये गये हैं। स्वामी सुबोधगिरिजी के आद्य शंकराचार्य तथा श्री रामकृष्ण परमहंस पर लिखे दो लेख उत्कृष्ट कोटि के हैं।

विश्वव्यापी श्रीराम-कथा

डॉ. हरवंशलाल ओबराय हिन्दू संस्कृति के अध्येता थे। उन्होंने अनेक देशों का भ्रमण किया और विश्व में यत्र-तत्र बिखरे हिन्दू-संस्कृति के प्रमाणों को एकत्रित किया। उनके उद्बोधनों और लेखों का संग्रह पाँच खण्डों में ओबराय-समग्र के रूप में प्रकाशित हो चुका है। पूज्य स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने यह महती योजना कार्यान्वित की।

उन्हीं समग्र ग्रन्थों से विषयानुसार पुस्तकों का प्रकाशन अब प्रारम्भ किया गया है। उसी का प्रथम पुष्प **रामायण का हार्द** रूप में आया है। इसमें श्रीराम-कथा से सम्बन्धित लेख एवं भाषणों का संग्रह है। इनमें श्रीराम के दिव्य चरित्र और जनमानस पर उसके अमिट प्रभाव की चर्चा की गई है। एक लेख में भारत के विभिन्न भागों में रचित राम-कथाओं की जानकारी दी गई है। तमिलनाडु के महाकवि कम्ब की कम्बन-रामायण का विशेष उल्लेख किया गया है। 'रामायण-विश्व ऐक्य का आधार' लेख में विश्व के अन्यान्य देशों में गाई जाने वाली श्रीराम-महिमा का वर्णन है।

इस रूप में यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी और जानकारी में वृद्धि करने वाली है। प्रकाशन के लिये स्वामीजी का साधुवाद। साज-सज्जा एवं मुद्रण भी उत्तम है।

पाथेय कण, 1 मार्च, 2014

ॐ ईशावास्यं इदं सर्वम्

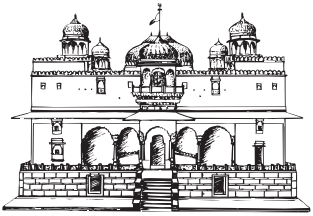

श्री लालेश्वर महादेव मन्दिर

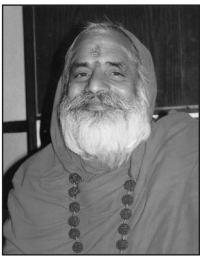

महन्त
स्वामी संवित् सोमगिरि
श्रीलालेश्वर महादेव मन्दिर
शिवमठ, शिवबाड़ी,
बीकानेर 334003 (राजस्थान)

।।श्री कृष्णं वन्दे जगद्-गुरुम्।।

परब्रह्म ने श्रीकृष्ण रूप में अवतरित होकर लीला की। श्रीकृष्ण ने मानवमात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को सिद्ध करने हेतु श्रुतिसार रूपी गीता का उपदेश दिया। शंकरावतार श्री भाष्यकार आद्य शंकराचार्य भगवान् के गीता भाष्य में

अद्वैतामृत वर्षिणी गीता के तात्पर्य को सुस्पष्ट कर दिया गया है। गीता पर अनेक विद्वानों ने टीकाएं लिखी हैं। गीता के प्रथम दो अध्यायों पर लिखी गयी इस पुस्तक के लेखक स्वामी संवित् श्री सुबोधगिरि ने दीर्घकाल तक वरिष्ठ विद्वानों द्वारा उपनिषदों और गीता का श्रवण किया है एवं गीता की अनेक टीकाओं का अध्ययन किया है। दर्शन, संस्कृति, धर्म, इतिहास आदि अनेक विषयों का विस्तृत अध्ययन कर चुके श्री सुबोधगिरि की प्रस्तुत पुस्तक का विषय-प्रतिपाद उनके स्वअभिप्राय से भी रंजित है। आशा है, कि इस पुस्तक के पाठकों को गीता का और अधिक गहराई से अध्ययन करने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

प्रभु से प्रार्थना है, कि श्री सुबोधगिरि साधना के पथ पर निरन्तर प्रगति करते हुए गीतानुसारी कृतकृत्यता का अनुभव करें।

शिवकांक्षी

स्वामी संवित् सोमगिरि

गीता का पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष
(प्रथम दो अध्याय : पहला और दूसरा)

श्रीमद्भगवद्गीता को विश्व का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद के इसमें कुल सात सौ श्लोक हैं और उनमें भारत का सारा तत्त्वज्ञान आ गया है। इसलिए प्रत्येक काल में अपने देश के शीर्षस्थ विद्वानों ने गीता की व्याख्या अवश्य की। आज के काल में भी लोकमान्य तिलक, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, स्वामी चिन्मयानन्द, डॉ. राधाकृष्णन्, स्वामी रामसुखदासजी महाराज, विनोबा भावे, आचार्य रजनीश—सभी ने गीता पर भाष्य अवश्य लिखा है। सभी महापुरुषों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से गीता को समझाया।

गीता के भाष्यों में एक भाष्य अब स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी का भी जुड़ गया है। 'गीता का पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष' नाम से लिखी गई इस टीका में भगवद्गीता के प्रथम दो अध्यायों की ही व्याख्या की गई है। स्वामीजी ने ही स्पष्ट किया है कि प्रथम दो अध्यायों में गीता का सार-तत्त्व आ जाता है, शेष अध्यायों में तो इन्हीं तत्त्वों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

अद्भुत ग्रन्थ गीता की अन्य व्याख्याओं से यह विवेचन कुछ अलग है। इसमें गीता को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में समझाया गया है। सम्पादकीय में स्वामीजी

ने लिखा है—*'हिन्दू शब्द का उच्चारण साम्प्रदायिकता का प्रमाण हो गया और मुस्लिम-ईसाई की रट धर्मनिरपेक्षता की कसौटी बन गई।'*

गीता की व्याख्या करते हुए आगे कहा गया है—*'देशभक्ति का अर्थ है उस देश की भाषा, इतिहास, साहित्य, परम्परा, सभ्यता-संस्कृति से प्रेम किया जाये।....जो अपने को भारतीय कहे, भारतीय नागरिकता का लाभ उठाये पर भारतीयता के इन आधारों को अस्वीकार करे, वह भारतीय कैसा?'*

पुस्तक में अर्जुन-विषाद योग (प्रथम अध्याय) की मीमांसा के बाद द्वितीय अध्याय के प्रत्येक श्लोक की राष्ट्रीय संदर्भ में विवेचना की गई है। इसी में सांख्य-योग नाम के अध्याय के तैंतीसवें श्लोक की व्याख्या करते हुए पूज्य स्वामीजी ने लिखा है—*'अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण जैसा गुरु मिला अन्यथा अर्जुन भी अशोक की तरह भिक्षु बनकर देश को आततायियों के सुपुर्द कर देता।'*

राष्ट्रीय संदर्भ में गीता के प्रथम दो अध्यायों की यह टीका निश्चित रूप से पठनीय है। 'संन्यास आश्रम' के अन्य सभी प्रकाशनों की तरह इसका मुद्रण एवं साज-सज्जा भी सुन्दर है। प्रारम्भ में दिया गया सम्पादकीय एवं भगवद्गीता से सम्बन्धित लेख मूल विषय-वस्तु को पढ़ने की उत्सुकता जगाते हैं।

पाथेय कण, 1 जुलाई, 2017

परम श्रद्धेय स्वामीजी

सादर नतमस्तक

मैं आपका अत्यधिक ऋणी हूं कि जिन्होंने 'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' के सम्पादन के साथ अपने स्वरचित ग्रन्थों से परिचित करा कर मानव मात्र की पवित्र आस्थाओं तथा श्रेष्ठ भावनाओं को सुदृढ़ किया तथा धर्म एवं संस्कृति के प्रति एक नव आत्मविश्वास तथा नव चेतना का संचार किया। मैं आपके इस दिव्य कर्म के लिए शत-शत बधाई देता हूं। कृपया स्वीकार करें।

आपके भेजे तीन स्वरचित ग्रन्थों को पढ़ने का परम सौभाग्य मिला। आपके द्वारा लिखा 'गीता का पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष' (गीता का प्रथम एवं द्वितीय अध्याय) के अध्ययन का मौका मिला। इससे पूर्व भगवान् कृष्ण की कर्मभूमि कुरुक्षेत्र में अनेक वर्षों तक रहने के कारण तथा कुछ श्रेष्ठ विचारकों, चिंतकों के सम्पर्क में आने पर तपो पवित्र तथा राष्ट्रीय ग्रन्थ गीता के सन्दर्भ में कुछ प्रवचन सुनने तथा समझने का सुअवसर मिला। निस्संदेह आपका ग्रन्थ इस दिशा में परम तात्त्विक, श्रेष्ठ, विलक्षण तथा दिव्य दृष्टि देने वाला लगा। इस गहन चिन्तन तथा सूक्ष्म विश्लेषण के लिए मैं भारत की श्रेष्ठ ऋषि मनीषी परम्परा को प्रणाम करता

हूं। पढ़कर असीम आनन्द आया। प्रभु से प्रार्थना है कि शीघ्र ही भारत सरकार द्वारा भी इसे भारत का राष्ट्रीय ग्रन्थ घोषित किया जाये।

आपने 'राष्ट्रीय समस्या और समाधान' ग्रन्थ में डॉ. हरवंशलाल ओबराय के कुछ संस्मरणों तथा पत्रों को जोड़कर भारतीय धर्म, संस्कृति, दर्शन तथा इतिहास का प्रत्यक्ष साक्षात्कार ही करा दिया। 'रामायण : साम्प्रदायिक या धार्मिक', 'हमारे आदर्श राम या बाबर', 'गीता राष्ट्रीय ग्रन्थ', 'पर्यावरण के प्रति भारतीय दृष्टि' आदि श्रेष्ठ लेख भारतीय जीवन की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।

आपने 'भारतीय परम्परा में काम पुरुषार्थ' ग्रन्थ में 'काम' के सन्दर्भ में भारतीय चिन्तन दृष्टि को सहज, सरल, सुगम्य भाषा में व्याख्यायित किया है। विश्व के अन्य धर्मों की तुलना करते हुए इसे सुन्दरतम ढंग से चित्रित किया है। भारत की विवेकपूर्ण तथा सार्थक दृष्टि से ही डार्विन का शक्तिशाली के अस्तित्व का सिद्धान्त (Survival of the fittest), मार्क्स की अर्थ तथा काम के प्रति भ्रान्त कल्पना तथा सिंगमण्ड फ्रायड का काम मनुष्य की मूल वृत्ति, का विचार विश्व के धरातल पर ध्वंसित हो गया है। वह बालू की दीवार की भांति ढह गया है।

आपके तीनों ग्रन्थ परम साधना तथा अनुभूति के त्रिफल हैं जो अद्वितीय हैं सदैव प्रेरक रहेंगे। मेरी शुभ कामनायें स्वीकार करें।

सदैव आपका
सतीश चन्द्र मित्तल

संस्कृति का आख्यान

डॉ. ओबराय समग्र में पूज्य स्वामी सुबोधगिरिजी के भी कुछ लेख समाहित किये गये हैं। भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित लेखों से पुस्तक बनी है–'भारतीय संस्कृति पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान'। संस्कृति और भारतीय संस्कृति को समझने के लिये यह उत्कृष्ट संग्रह है। पहला और विस्तृत लेख भारतीय संस्कृति पर ही है। लेख का पहला वाक्य है–

'संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है, भूखण्ड राष्ट्र की देह है, साहित्य उसकी दृष्टि है, भाषा उसकी वाणी है, सभ्यता उसका श्रृंगार है, कलाएं उसका सौंदर्य हैं, विज्ञान उसका वैश्विक शोध है, अर्थ इसका भण्डार है, संस्कृति उसकी प्राण है। संस्कृति के बिना सब निष्प्राण हो जायेगा।'

लगभग सत्तर पृष्ठों के इस लेख को हृदयंगम करने के बाद संस्कृति सम्बन्धी कोई प्रश्न नहीं बचते। पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान की भूमिका की भी इसमें

सुन्दर मीमांसा है। स्वामीजी की विद्वत्ता तो संदेह से परे है। सरल भाषा-शैली में संस्कृति और सभ्यता के वर्णन ने संग्रह को पठनीय बना दिया है।

पाथेय कण, 1 मार्च, 2014

विश्वव्यापी भारतीय संस्कृति

प्रसिद्ध इतिहासकार, चिंतक एवं दार्शनिक स्व. डॉ. हरवंशलाल ओबराय के भाषणों एवं लेखों का संग्रह पाँच खण्डों में प्रकाशित हो चुका है। उसी विपुल भण्डार से विषयवार मोती चुनने का कार्य पूज्य स्वामी सुबोधगिरिजी कर रहे हैं। पिछले दिनों अन्यान्य विषयों पर उनकी आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अब दो और विषयों पर पुस्तकें आई हैं। दोनों विषय आज के संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। पूरे विश्व में हिन्दू संस्कृति का प्रभाव होने के अनेकों प्रमाण दुनिया में बिखरे पड़े हैं। इन साक्ष्यों का गहराई से अध्ययन पहले दीवान चमनलाल ने किया था। उनकी दो पुस्तकों **हिन्दू अमरीका** तथा **इण्डिया मदर ऑफ अस आल** में हिन्दू संस्कृति के इन भग्नावशेषों का वर्णन किया गया है। प्रकाण्ड विद्वान प्रो. रघुवीर ने भी अनेक देशों की यात्रा कर बहुत सारे साक्ष्य जुटाये। इतिहासकार पी.एन. ओक ने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया। चार खण्डों में वैदिक राष्ट्र का इतिहास लिख कर उन्होंने सिद्ध कर दिया कि प्राचीन काल में हिन्दू संस्कृति का ही प्रभाव पूरे विश्व में था।

डॉ. ओबराय ने उसी मान्यता को और मजबूती दी है। उनके इस विषय के लेखों का संकलन 'विश्व भारत का चिर ऋणी है' नाम से प्रकाशित हुआ है। यह संकलन वास्तव में पठनीय है तथा आगे शोध के लिये आधार ग्रन्थ बन सकता है। इसके एक लेख में 'आर्यों के भारत में आने की धारणा' को मिथ्या एवं पूर्वाग्रह-युक्त सिद्ध किया गया है। यह भी बताया गया है कि भारत के श्रेष्ठ पुरुष पूरी दुनिया को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनाने के लिये अन्य देशों में गये। आगे के लेखों में मिस्र, ईरान, रूस, यूनान, रोम, उज्बेकिस्तान, दक्षिण-पूर्व एशिया, इंग्लैण्ड, सऊदी अरब आदि देशों पर प्राचीन काल में हिन्दू संस्कृति के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। प्रथम पूज्य गणपति, श्रीराम, श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध आदि के दुनिया के देशों में उपासना के प्रमाण भी संकलन के लेखों में हैं।

भारतीय परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय—दूसरा संकलन हिन्दू संस्कृति की धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अवधारणा पर है। इसमें स्वामी सुबोधगिरिजी के लेख भी सम्मिलित किये गये हैं। 'धर्म' के सम्बन्ध में समाज में बड़ी भ्रामक कल्पनाएं हैं। संकलन में धर्म की अवधारणा को भी सुस्पष्ट किया गया है। साथ ही हिन्दू धर्म की विशेषताओं पर भी दृष्टिपात किया गया है।

दोनों ही संकलन संग्रहणीय हैं तथा **ज्ञान गंगा प्रकाशन,** जयपुर और **प्रज्ञा-साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र,** जयपुर में उपलब्ध हैं।

पाथेय कण, 1 अगस्त, 2014

एक श्रेष्ठ सांस्कृतिक लेख-संग्रह

दिल्ली एवं पंजाब के अनेक विश्वविद्यालयों के कॉलेजों में दर्शनशास्त्र के आचार्य रहे डॉ. हरवंशलाल ओबराय भारतीय संस्कृति के विशिष्ट अध्येता एवं गवेषक थे। उन्होंने विश्व में भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार एवं प्रभाव का गहन अनुशीलन करते हुए अनेक विश्वविद्यालयों में व्याख्यान दिये थे। स्वदेश के साथ ही विदेश के भी बहुसंख्यक संस्थानों में भी उन्होंने प्रवचन दिये थे। राँची में उन्होंने संस्कृति-विहार की स्थापना की थी, जिसके उद्घाटन-समारोह में म.म.पं. गोपीनाथ कविराज जैसे श्रेष्ठतम मनीषी तथा श्री श्री माँ आनन्दमयी सदृश सन्त-शिरोमणि सम्मिलित हुए थे। संस्कृति-विहार के माध्यम से डॉ. ओबराय ने छोटा नागपुर के वनवासी बन्धुओं के मध्य भी संस्कृति की महाज्योति प्रज्वलित की थी। विदेशी पादरियों के द्वारा किये जा रहे हिन्दू-समाज के धर्मान्तरण तथा अमानुषी अत्याचारों का उन्होंने प्रबल प्रतिरोध किया। यद्यपि उनका निधन सितम्बर, 1983 में एक व्याख्यान-कार्यक्रमजन्य यात्रा में दुर्घटनावश हो गया, तथापि उनके प्रवचन तथा शोधपूर्ण ग्रन्थ जिज्ञासुओं के लिए निरन्तर प्रेरणा और प्रकाश के विशिष्ट स्रोत हैं। यह उक्ति बहुचर्चित है कि किसी महान् प्रज्ञापुरुष की कीर्ति उसके प्रबुद्ध शिष्यों और ग्रन्थों पर निर्भर होती है। इस दृष्टि से डॉ. ओबराय के साहित्य और व्याख्यानों के संरक्षण के लिए उनके विशिष्ट शिष्य स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने काम का बीड़ा उठाया। उनके प्रयत्न से 'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' के नाम से यह साहित्य पाँच खण्डों में प्रकाशित हो चुका है, जिसके शीर्षक क्रमशः इस प्रकार हैं–1. राष्ट्रीय समस्याएँ और इतिहास, 2. महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, 3. धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान, 4. वेदान्त-दर्शन की वैज्ञानिकता तथा 5. गीता दर्शन की सार्वभौमिकता।

'विश्व भारत का चिर ऋणी है' शीर्षक ग्रन्थ डॉ. ओबराय के प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण 26 लेखों का संग्रह है, जिनका संकलन और सम्पादन स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने स्वयं किया है। इन निबन्धों की मुख्य 'थीम' विश्व भर के विभिन्न छोटे-बड़े यूरोपीय देशों, अमेरिका, रूस, चीन, ईरान, दक्षिण-पूर्वेशिया तथा अरब देशों में भारतीय संस्कृति का कैसे और कितना प्रसार हुआ तथा आज भी उनमें हमारे कौन-से सांस्कृतिक अवशेष मिलते हैं। डॉ. ओबराय के अनुसार

सोवियत रूस श्वेत-ऋषि का देश है तथा रूसी भाषा संस्कृति की पुत्री है। अन्य स्थापनाओं के अनुसार (क्या) इंग्लैण्ड कभी भारत का उपनिवेश था? यहूदी और ईसाई धर्मग्रन्थों में संस्कृत का शब्द-भण्डार विद्यमान है। नील नदी का हमारे पुराणों में विवरण है। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ अत्यन्त विचारोत्तेजक, प्रेरक तथा हमारे मानसिक क्षितिज का दूर तक विस्तार करने वाला है। संक्षेप में ग्रन्थ पठनीय, मननीय तथा संग्रहणीय है। ग्रन्थकार डॉ. ओबराय के साथ ही सम्पादक श्री स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी भी इस नवीन ज्ञानराशि को जुटाने के लिए निश्चय ही बधाई के पात्र हैं।

प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय
बी-1/4, विक्रान्त खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ 226010 (उ.प्र.)
राष्ट्रधर्म, अगस्त, 2014

मातृत्व के पंचविध रूप

अच्छा साहित्य एक ऐसी निधि है जिसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। किसी भी व्यक्ति के जीवन में अच्छी पुस्तकें सदैव सही मार्ग पर बनाये रखने वाली होती हैं। सत्साहित्य की रचना करने वालों का समाज सदा ऋणी रहता है। और यदि कोई संन्यासी ऐसे साहित्य के उन्नयन को अपना मिशन बना ले तो समाज की कृतकृत्यता ऐसे मिशन के लिये और बढ़ जाती है। इसलिये पूज्य स्वामी संवित् सुबोधगिरि का अभिनन्दन किया जाना चाहिये कि वे लगातार उत्तम साहित्य का सृजन व प्रकाशन कर रहे हैं।

हाल ही में भीनासर स्थित उनके आश्रम से छह और पुष्प पल्लवित हुए हैं। इनमें अधिकांश सामग्री डॉ. हरवंशलाल ओबराय के ग्रन्थों की है तथा कुछ लेख पूज्य स्वामीजी के हैं। एक पुस्तक में भारतीय संदर्भ में नारी की महत्ता एवं मातृत्व के पाँच रूपों पर पूर्व प्रकाशित लेखों का संकलन है। हिन्दू संस्कृति में नारी का जितना ऊँचा स्थान रहा है उसकी तो कल्पना भी पश्चिमी जगत या सेमिटिक मजहबों को मानने वाले नहीं कर सकते। नारी या मातृ-शक्ति—माता, भगिनि और पत्नी—तीनों रूपों में वन्दनीय है।

'भारतीय परम्परा में नारी और मातृत्व के पंचविध रूप' में भारतीय संस्कृति में मातृ-शक्ति का पूजनीय स्थान होने के अतिरिक्त माँ के पाँच रूपों पर भी विचार किया गया है। ये पाँच रूप हैं–माँ सरस्वती, माँ दुर्गा तथा माँ लक्ष्मी के रूप में जगन्माता, भारत माता, जननी, गो-माता तथा गंगा माता।

सभी रूपों के विशद् विवेचन के साथ जगन्माता का स्वरूप लेने वाली कुछ प्रमुख नारियों के जीवन पर भी पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। माता जीजा बाई, देवी अहल्या, महारानी लक्ष्मीबाई, भगिनि निवेदिता तथा श्री माँ जैसी तेजस्वी महिलाओं के प्रेरक जीवन की एक झलक उक्त प्रकाशन में है।

सद्यप्रकाशित छह पुस्तकों में से एक अन्य भारत के परम्परागत पर्वों पर है। मकर संक्रांति, वर्ष-प्रतिपदा, वैसाखी, गुरु पूर्णिमा, विजयादशमी, रक्षाबन्धन आदि पर्वों के प्राकृतिक व सामाजिक महत्त्व को बताते हुए भारत की उत्सव परम्परा पर एक विहंगम दृष्टि इस पुस्तक में डाली गई है। कुछ मौलिक सुझाव भी संकलित लेखों में हैं। उदाहरणार्थ फाल्गुनी पूर्णिमा को होली के साथ-साथ चन्द्र-जयंती मनाने की बात कही गई है। चन्द्रमा का जन्म फाल्गुन मास की पूर्णिमा को ही माना गया है। कार्तिक मास में दीपावली आती है। इसके पूर्व घरों में सफाई अभियान चलता है। कार्तिक स्नान को भी भारतीय परम्परा में पुण्यदायी माना गया है। दीपावली पर मिट्टी के दीयों में दीपक जलाना भी पर्यावरण शुद्धि का एक उपाय है। अतः कार्तिक मास को 'पर्यावरण विकास माह' के रूप में मनाने का एक नया विचार भी उक्त पुस्तक में दिया गया है।

दोनों ही प्रकाशन पठनीय एवं भारतीयता उत्पन्न करने की दृष्टि से उपयोगी हैं। शेष चार संकलन भी विशेषताएं लिए हुए हैं। पुस्तकें इस प्रकार हैं :

1. भारतीय परम्परा में नारी और मातृत्व के पंचविध रूप, मूल्य 85/-
2. भारतीय परम्परा में उत्सव, मूल्य 70/-
3. आत्मतत्त्व भारत की अमरता एवं स्वस्थ जीवन का राज, मूल्य 80/-
4. गीता में भक्ति योग, मूल्य 30/-
5. सृष्टि रहस्य, कर्म का सिद्धान्त तथा यज्ञ तत्त्व, मूल्य 50/-
6. जीवन रहस्य और मृत्यु रहस्य, मूल्य 20/-

पाथेय कण, 1 नवम्बर, 2014

'संन्यास आश्रम' के दस और उत्कृष्ट प्रकाशन

पूज्य स्वामी सुबोधगिरिजी महाराज सामान्य जन को सत्साहित्य के माध्यम से संस्कारित करने के अभियान में दत्त-चित्त से जुटे हुए हैं। समाज को सही दिशा देना ही संन्यास-धर्म है। पूज्य स्वामीजी संस्कार-क्षम साहित्य की रचना के मार्ग से भी समाज का मार्गदर्शन कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति और इतिहास के अध्येता डॉ. हरवंशलाल ओबराय के विपुल साहित्य में से कुछ और मोती उन्होंने निकाले हैं। गत दिनों दस और पुस्तकें संन्यास आश्रम भीनासर से प्रकाशित हुई

हैं। तीन पुस्तकों में देश के श्रेष्ठ पुरुषों की जीवनियों का संकलन है। 'आध्यात्मिक महापुरुष' में भगवान् दत्तात्रेय, विश्वकर्मा, दधीचि, गौतम बुद्ध, आद्य शंकराचार्य, भगवान् महावीर, कबीर एवं संत ज्ञानेश्वर के साथ-साथ चैतन्य महाप्रभु, भक्त रैदास, एकनाथ, महर्षि दयानन्द, श्री रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द तथा श्री अरविन्द जैसे तेजपुंजों की जीवनियाँ हैं।

'हमारे स्वतंत्रता सेनानी' में यशस्वी सम्राट विक्रमादित्य को पहला स्वतन्त्रता सेनानी माना गया है। प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप और महाराज शिवाजी के संक्षिप्त जीवन-वृत्तों के साथ वीर सावरकर, सुभाष बाबू, तिलक, महात्मा गांधी और संघ-संस्थापक डॉ. हेडगेवार की जीवनियाँ भी इसमें शामिल की गई हैं। शहीद शिरोमणि भगतसिंह और उधमसिंह के साथ 21 स्वतन्त्रता सेनानियों की जीवनियाँ इसमें हैं। 'हमारे साहित्यकार' में महर्षि वाल्मीकि और वेद व्यास से लेकर जयशंकर प्रसाद और मुंशी प्रेमचन्द तक के साहित्यकारों का जीवन-परिचय संकलित किया गया है। 'सिख-परम्परा' पुस्तक में गुरु नानक सहित सभी गुरु साहिबान के कर्तृत्व के साथ-साथ पंजाब समस्या पर भी दृष्टिपात किया गया है।

भारतीय दर्शन और आधुनिक विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन एक अन्य पुस्तक में किया गया है। 'हमारी राष्ट्रीय समस्याएं' पुस्तक भी काफी विचारोत्तेजक है।

डॉ. ओबराय पुस्तक मालिका के सभी दसों पुष्प पठनीय एवं अत्यंत उपयोगी हैं। सभी में मुद्रण एवं साज-सज्जा तो उच्च-कोटि की है ही, प्रशंसनीय बात यह है कि मुद्रण की अशुद्धियाँ इन पुस्तकों में कतई नहीं हैं। इस दृष्टि से इनका मूल्य बहुत ही कम है।

पाथेय कण, 19 अप्रैल, 2015

डॉ. हरवंशलाल ओबराय की चार पुस्तकें

डॉ. ओबराय भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ अध्येता, तत्त्व चिन्तक एवं प्रतिपादक थे। उनके सांस्कृतिक प्रसार-प्रचार के क्षेत्रों में भारत ही नहीं, विश्व के अनेक देश थे। दिल्ली एवं पंजाब विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध अनेक महाविद्यालयों में समय-समय पर वे प्राध्यापक भी रहे। राँची में उन्होंने संस्कृति विहार की स्थापना की, जिसके उद्घाटन-समारोह को श्रीश्री माता आनन्दमयी, महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज एवं पूज्य स्वामी श्री शरणानन्दजी सदृश विश्ववन्द्य महापुरुषों ने अपनी उपस्थिति और आशीर्वाद से गौरवान्वित किया। डॉ. ओबराय ने अपने

व्यस्त जीवन में भी समय निकालकर अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन करते हुए, तथा वाचिक क्रम से भी सांस्कृतिक विधि का उन्मुक्त रूप से संप्रेषण किया। उनके ग्रन्थ पूज्य स्वामी संवित् सुबोधगिरि (संन्यास आश्रम), भक्तानन्द शिव मन्दिर, भीनासर, (बीकानेर) के सुसम्पादन एवं अनुग्रह से निरन्तर प्रकाशित हो रहे हैं। कतिपय कृतियों के अल्प कलेवर युक्त होने पर भी उनमें निहित तत्त्वज्ञान की निधि बहुमूल्य है। उनमें से कुछ संप्रति मेरे सम्मुख हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है–**(1) सृष्टि-रहस्य, कर्म का सिद्धान्त तथा यज्ञ तत्त्व**–मात्र 72 पृष्ठों की इस पुस्तक में डॉ. ओबराय के 'सृष्टि-रहस्य, कर्म सिद्धान्त, कर्मयोग, जहाँ राम तहँ काम नहिं तथा गीता में यज्ञ तत्त्व' लेख पूज्य स्वामीजी के द्वारा संकलित तथा सम्पादित रूप में संगृहीत हैं। इनमें शास्त्रीय गाम्भीर्य के साथ सम्प्रेषण की रोचकता तत्त्वज्ञान की गहराई में भी पाठक को बाँधे रखती है।

(2) आत्मतत्त्व भारत की अमरता एवं स्वस्थ जीवन का राज–इस अल्पकाय कृति में विभिन्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत 23 आलेख निबद्ध हैं, जिनकी विषयवस्तु आत्मतत्त्व, हिन्दू धर्म की विशेषताओं, पूर्व और पश्चिम के दर्शनों की तुलनात्मक विवेचना, भारतीय संस्कृति की महत्ता और चिन्ता से मुक्ति के उपायों पर केन्द्रित है। एक आलेख है 'स्वतन्त्रता के सांस्कृतिक आधार', इसे पढ़कर लगता है कि सुसंस्कृति के अभाव में हमारी स्वतन्त्रता भी आज कितनी अधूरी है। राष्ट्र-जीवन में, हमें जिन सांस्कृतिक पुरोधाओं के चिन्तन को वरीयता देनी चाहिए थी, उनसे हम अभी कितने दूर हैं। चाहे गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, गुरुगोविन्दसिंह, स्वामी दयानन्द सरस्वती सदृश कवि-मनीषी हों या श्रीराम, श्रीकृष्ण जैसे अवतारी महापुरुष हों, हमने किसी के भी विचारों को क्या राष्ट्र-निर्माण में समीचीन स्थान दिया है?

(3) भारतीय परम्परा में नारी और मातृत्व के पञ्चविध रूप–इस कृति की विषयवस्तु नाम से ही स्पष्ट है। डॉ. ओबराय और स्वामीजी ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से प्राच्य और प्रतीच्य सन्दर्भों में नारी विषयक अवधारणाओं का विश्लेषण करते हुए भारतीय संस्कृति में नारी के विशिष्ट गौरव को रेखांकित किया है। साथ ही, गोमाता, माँ गंगा, पार्वती, शकुन्तला, अनसूया, कुन्ती, जीजाबाई, अहल्याबाई, लक्ष्मीबाई, भगिनी निवेदिता, एनी बेसेण्ट, अरविन्द आश्रम की पूज्य श्री माँजी तथा सरोजिनी नायडू इत्यादि के प्रेरक व्यक्तित्व और मननीय कृतित्व को आकर्षक ढंग से उपस्थापित किया है।

4. भारतीय परम्परा में उत्सव–'पर्व' का अर्थ है, जिसके आयोजन से सर्वविध प्रसन्नता प्राप्त हो, भारतीय जीवन में इसीलिए अत्यन्त प्राचीन काल से ही बहुविध पर्वों और उत्सवों का समावेश दिखलायी देता है; लेकिन यह भी

सच है कि आज हम अपने बहुसंख्यक पर्वों की प्रतीकात्मकता, प्रयोजननिष्ठता और उत्सवधर्मिता को भूल चुके हैं। इस कृति के प्रणेता ने हमें नववर्ष, रामनवमी, वैशाखी, लोहड़ी, बुद्ध-जयन्ती, गुरुपूर्णिमा, रक्षाबन्धन, वर्ष प्रतिपदा, कर्म एकादशी तथा विजयादशमी के महत्त्व को बतलाते हुए ऐतिहासिक सन्दर्भों में उनकी उपादेयता से परिचित कराया है। लेखक बहुश्रुत मनीषी रहे हैं, अतः उनकी कृतियों में प्रामाणिक सन्दर्भ स्वतः अनुस्यूत हैं।

संक्षेप में स्व. डॉ. ओबराय और पूज्य स्वामी संवित् सुबोधगिरि के अपार वैदुष्य, आध्यात्मिक दृष्टि और सुबोध सम्प्रेषण–सामर्थ्य से समन्वित ये चारों कृतियाँ अति मननीय तथा संग्रहणीय हैं।

—प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय

बी-1/4, विक्रान्त खण्ड, गौमती नगर, लखनऊ 226010 (उ.प्र.)

राष्ट्रधर्म, मार्च, 2015

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और उनका भक्तियोग

पांच वृहद् खण्डों में प्रकाशित स्व. डॉ. हरवंशलाल ओबराय के समग्र को अब छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप में विषय के अनुसार प्रकाशित किया जा रहा है। यह सत्कार्य भीनासर के पूज्य स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी महाराज कर रहे हैं। अभी तक 24 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। हाल में दो और पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और स्वामीजी लिखित भक्यियोग।

विश्व के अब तक के इतिहास के सर्वश्रेष्ठ और महानतम व्यक्ति कोई हुए हैं तो वे हैं योगेश्वर श्रीकृष्ण। डॉ. ओबराय ने ऐसे विराट व्यक्तित्व को जिन दो प्रवचनों में उतारने का प्रयत्न किया था वे दोनों प्रवचन 'योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण' में हैं। दोनों प्रवचन जन्माष्टमी के अवसर के हैं। इनमें श्रीकृष्ण की महत्ता की ओर इंगित किया गया है। श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निसृत गीता, इसके विश्वव्यापी प्रभाव और इसकी सार्वभौमिकता की चर्चा भी इस पुस्तक में है। विश्व के अन्यान्य देशों में श्रीकृष्ण किन-किन रूपों में पूजे जाते हैं, यह भी बताया गया है।

रास-लीला के बारे में कई लोगों के मन में भ्रम रहता है। रास-लीला का सही मन्तव्य और श्री राधाजी के दिव्य चरित्र के वर्णन के साथ श्रीमद्भागवत पर भी प्रकास डाला गया है। परिशिष्ट में स्व. विष्णुकांत शास्त्री का श्रीराम पर एक लेख भी सम्मिलित किया गया है। पुस्तक निश्चित रूप से पठनीय है। मुद्रण और साज-सज्जा हमेशा की तरह सुन्दर है।

भक्तियोग

इसका सम्बन्ध भी योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से ही हैं। गीता के बारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने भक्ति के मार्ग से ईश्वर की प्राप्ति का विवेचन किया है। इसी अध्याय की मीमांसा पूज्य स्वामी सुबोधगिरिजी ने की है। उनकी मीमांसा की विशेषता यह है कि उन्होंने 'भक्ति' को एकांगी और केवल व्यक्ति सम्बन्धित नहीं माना है। इसलिए प्रारम्भ में ही स्वामीजी ने स्पष्ट किया है कि देश और समाज से अलग होकर भक्ति नहीं की जा सकती, न ही ऐसी भक्ति का कोई मूल्य है। देश-भक्ति का महत्त्व बताते हुए उन्होंने कहा कि देश-भक्ति की सीढ़ी चढ़कर ही ईश-भक्ति की ओर बढ़ा जा सकता है।

इसके पश्चात् उन्होंने गीता के बारहवें अध्याय की सुन्दर व्याख्या की है। इस अध्याय में श्लोक कुल बीस ही हैं किन्तु गीता के प्रत्येक श्लोक की व्याख्या में एक पुस्तक लिखी जा सकती है। पूज्य स्वामीजी ने सामान्यजन के समझने योग्य शब्दों में इन बीस श्लोकों की व्याख्या की है। यह प्रचलित व्याख्याओं से अलग और वैज्ञानिकता लिए हुए हैं। अन्त में यह बताया गया है कि 'भक्ति' ने किस प्रकार पराधीनता के काल में हमारे धर्म और समाज को बचाया। यह अध्याय सर्वाधिक पठनीय है। पूरी पुस्तक ही ध्यान से पढ़ी जानी चाहिए।

पाथेय कण, 1 फरवरी 2017

गीता की विश्वव्यापी प्रतिष्ठा

केवल सात सौ श्लोकों की गीता का विश्व की लगभग सभी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। पूरी दुनिया के दार्शनिकों, चिन्तकों ने गीता से प्रेरणा प्राप्त की है। आइंस्टाइन तथा ओपनहाइमर जैसे महान् वैज्ञानिक गीता के भक्त थे। डॉ. हरवंशलाल ओबराय के गीता पर लिखे लेखों से संकलित उक्त पुस्तक गीता की महत्ता को स्पष्ट कर देती है। पुस्तक के 'देश-विदेश के स्वाधीनता संग्राम में गीता की भूमिका', वैज्ञानिक जगत् और गीता' तथा 'गीता का विदेशों में प्रभाव' विशेष रूप से पठनीय है।

पाथेय कण, 16 मार्च, 2016

भारतीय परम्परा में काम पुरुषार्थ

अपनी संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं। अर्थ, काम और मोक्ष, ये धर्म पर ही आधारित हैं। जब तक धर्म का आधार

रहेगा अर्थ और काम, मोक्ष अभ्युदय और निःश्रेयस का कारण बनेंगे, इसी बात को पचास पृष्ठों की पुस्तिका 'भारतीय परम्परा में काम पुरुषार्थ' में समझाया गया है। वास्तव में पचास पृष्ठों का यह एक ही निबन्ध है, जिसमें प्रारम्भ में ईसाइयत, सिग्मण्ड फ्रायड, बर्ट्रेण्ड रसेल तथा कार्ल मार्क्स की 'काम' की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् भारतीय परम्परा में काम की परिकल्पना को समझाया गया है। काम का अतिरेक तथा दमन, दोनों ही कष्टदायक है अतः विवेकपूर्वक इस पुरुषार्थ पर आचरण ही मंगलकारी होता है। यह बड़े तार्किक ढंग एवं सरल रीति से इस निबन्ध में बताया गया है।

दोनों ही 'पुष्प' अत्यंत उपयोगी एवं पठनीय हैं।

पाथेय कण, 16 जनवरी, 2019

भारतीय परम्परा में काम पुरुषार्थ

भारतीय मनीषा में, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ बताए गए हैं। काम सबसे गूढ़ और एक प्रकार से वर्जित-सा विषय है। अलग-अलग धर्मों के विचारकों ने काम की व्याख्या अपने-अपने पंथ और मत के अनुसार की है। बाइबिल और कुरान में इसे शैतान की संज्ञा दी गई है तो गीता में इसे देव का स्वरूप माना गया है।

'**धर्मा-विरुद्धो भूतेषु, कामोऽस्मि भरर्षभ**'

(जो धर्म के विरुद्ध नहीं है वह काम मैं ही हूं।)

धर्मपूर्वक कामना-पूर्ति स्वयं एक ईश्वरीय कर्म ही नहीं, वरन् स्वयं ईश्वर का रूप बन जाता है। काम जैसे मान के सबसे बड़े शत्रु को धर्म की मर्यादा में बांधकर गृहस्थ धर्म बना देना, काम को धर्म के आशीर्वाद से राम बना देना भारतीय संस्कृति में ही दर्शाया गया है। काम के पुरुषार्थ की अध्यात्म भाव से निर्वहन करने की व्याख्या इस पुस्तक में विद्वान् स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने की है। विदेशी संस्कृति के फ्रायड ने इस थ्योरी का विरोध किया था। बर्ट्रेण्ड रसेल ने तो इससे भी आगे बढ़कर कहा था—'संस्कार भोग में बाधा बनते हैं।' वात्स्यायन ने काम की व्याख्या भारतीय संस्कृति के अनुसार की है। विचारक रजनीश ने तो इसे समाधि की ओर अग्रसर होना बताया है। तात्पर्य यह है कि लेखक ने संक्षिप्त में काम की सारगर्भित व्याख्या की है। लेखक दर्शनशास्त्र में एम.ए. हैं। स्वामी देवानन्द ब्रह्मचारी से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा ली, आठ वर्षों तक पुरी के शंकराचार्यजी निश्चलानन्द के साथ चतुर्मास किये, स्वामी संवित् सोमगिरिजी से संन्यास दीक्षा ग्रहण की एवं स्वामी श्रद्धानन्दगिरिजी एवं स्वामी सोमगिरिजी ने

संयुक्त रूप से सन् 2012 में नृसिंह भवन, संन्यास आश्रम, भक्तानन्द शिव मन्दिर भीनासर के महंत पद का दायित्व सुशोभित करवाया। महंत पद पर अभिषिक्त होकर इस पुस्तक की रचना का प्रयोजन क्योंकर रहा? इस प्रकार की शंका का समाधान सुबोधगिरिजी पुस्तक के प्रारम्भ में ही करते हैं की 'छोटी बहिन के देवर में इस विषय में जिज्ञासावश लेखन किया है तथापि जिनकी पूर्व जन्म की साधना है, मानसिक स्तर, विवेक स्तर ऊंचा है और किसी बड़े लक्ष्य के प्रति समर्पित हैं, उनके लिए पूर्णतया काम त्याग सम्भव व सहज है।

दिलचस्प

दैनिक युगपक्ष, 4 जून, 2017

ॐ ईशावास्यं इदं सर्वम्

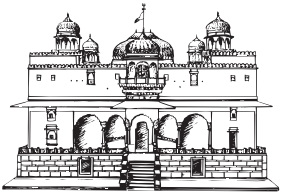

श्री लालेश्वर महादेव मन्दिर

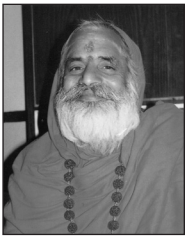

महन्त

स्वामी संवित् सोमगिरि

श्रीलालेश्वर महादेव मन्दिर, शिवमठ,
शिवबाड़ी, बीकानेर 334003 (राजस्थान)

शिवाशीर्वाद

परब्रह्म के अवतार प्रभु श्रीराम की महती कृपा से श्री स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने अपनी विशिष्ट शैली में इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक की रचना की है। अपने पूर्व प्रकाशन 'रामायण का हार्द' में नूतन सामग्री को सज्जित कर 'साक्षात् धर्म विग्रह प्रभु श्रीराम और भारतीय जीवन का अखण्ड प्रवाह' नामक यह पुस्तक भारतीय संस्कृति के मूल, गन्तव्य, गति, संरचना आदि सभी पक्षों को उजागर करती है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य व वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान को दृष्टि में रखते हुए विद्वान् लेखक ने कुशलता पूर्वक प्रतिपादित किया है कि युगों पुरानी भारतीय संस्कृति के अजस्र प्रवाह में ज्ञान-विज्ञान, पदार्थ ज्ञान और अध्यात्म ज्ञान के उच्चतम स्तरों को छुआ है, तथा आज भी भारत पुनः अपनी सनातन संस्कृति के परमार्थ दर्शन और व्यावहारिक दर्शन को अपना कर न केवल स्वयं अपितु समस्त विश्व चराचर जगत् अभ्युदय (बाह्य सर्वांगीण विकास)

और निःश्रेयस (आत्मा की ब्रह्मरूपता की अनुभूति) के शुभंकर मार्ग पर क्षिप्र गति से प्रयाण करेगा। भारतीय संस्कृति को अपनाने से ही विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान होकर एक शीतल, शान्त, सौहार्दपूर्ण परिवेश का निर्माण होगा। मनीषी लेखक द्वारा विरचित अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के पश्चात् यह नवीन रचना मां भारती के प्रति विशेष अर्घ्य के समान है।

अनेक भ्रान्तियों को प्रशमित करते हुए नूतन आलोकपूर्ण क्षितिजों को जन्म देता यह प्रकाशन अधिकाधिक लोगों को अनुप्राणित करे, यह शुभकामना है।

श्री स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी स्वस्थ व प्रसन्न रहते हुए परम कल्याण को प्राप्त करें—यह शिवाशीर्वाद है।

शिवाकांक्षी

संवित् सोमगिरि

।।श्रीहरिः।।

—श्रीगणेशाय नमः—

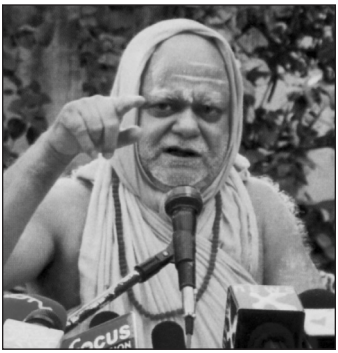

वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म अनिर्वचनीया मायाशक्ति के द्वार से जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण मान्य है। अत एव वह उत्पत्ति-स्थिति-संहृति-निग्रह (तिरोधान) और अनुग्रह संज्ञक पंच कृत्यों के निर्वाह की भावना से महासर्ग के प्रारम्भ में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति तथा गणपति संज्ञक सनातन पंच देवों के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश में सन्निहित क्रमशः उत्पत्ति-स्थिति-संहृति-निग्रह-अनुग्रह की क्षमता के अनुदर्शन से उक्त तथ्य की परिपुष्टि सम्भव है।

वेदान्त वेद्य ब्रह्म स्वतः निर्गुण-निराकार-सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म है। विशुद्ध सत्त्वात्मिका विद्या माया के योग से वह सगुण-निराकार सर्वेश्वर है। वह श्रीराम-कृष्णादि रूपों में अवतीर्ण होने पर सगुण-साकार सर्वेश्वर सिद्ध होता है। सगुण-साकार तथा सगुण-निराकार यह सृष्टि भी सच्चिदानन्द स्वरूप सर्वेश्वर की ही स्फूर्ति सिद्ध है।

मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम धर्म संज्ञक मर्यादा और ब्रह्म संज्ञक पुरुषोत्तम के अवतार हैं। धर्मसंस्थापन के द्वारा वे लौकिक-पारलौकिक उत्कर्ष और परमात्मा की प्राप्ति का पथ प्रशस्त करते हैं। तद्वत् शरणागत साधक को बुद्धियोग प्रदान कर कृतार्थ करते हैं। अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि में प्रयुक्त तथा विनियुक्त सनातन शास्त्र के सकल प्रकल्प दर्शन, विज्ञान और व्यवहार—तीनों में सामंजस्य सम्पन्नता के कारण सर्वसुमंगल है।

स्वामी श्री संवित् सुबोधगिरिजी ने प्रकृत ग्रन्थ में विविध मनोरम भावों को उद्भासित कर सर्वहितप्रद मार्ग को प्रशस्त किया है। तदर्थ उन्हें साधुवाद।

निश्चलानन्द सरस्वती
श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठ
भाद्रपद शुक्ला 8, वि.सं. 2076

समीक्षा

एक अदना व्यक्ति इस पुस्तक की समीक्षा करे, है तो यह अटपटापन ही, परन्तु पाठकों को पुस्तक का सार मिल जाएगा इसी वजह से कलम चलाने की हिम्मत की है।

पुस्तक के प्रारंभ में आशीर्वाद रूप में श्री लालेश्वर महादेव मन्दिर, शिव मठ, शिवबाड़ी, बीकानेर (राजस्थान) के महंत स्वामी संवित् सोमगिरिजी लिखते (कहते) हैं : परब्रह्म अवतार प्रभु श्रीराम की महती कृपा से श्री स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने अपनी विशिष्ट शैली में इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक की रचना की है। यह पुस्तक भारतीय संस्कृति के अजस्र प्रवाह में ज्ञान-विज्ञान, पदार्थ ज्ञान और अध्यात्म-गान के उच्चतम स्तर को छूती है।

राम के समर्पण भाव में लेखक लिखते हैं : प्रभु श्रीरामचन्द्र का जन्म भारत के ही नहीं, विश्व के सांस्कृतिक इतिहास की एक अपूर्व घटना है। राम हमारे देव विग्रह ही नहीं अवतार विग्रह, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परब्रह्म-परात्पर ही नहीं, हमारे राष्ट्रीय महापुरुष भी हैं।

कुछ समय पूर्व तक उत्तर भारत के घर की पहचान दो चीजों से होती थी—बेठन में बंधी रामचरितमानस की पोथी से और तुलसी के पौधे से।

राम तो आम भारतियों के नित्य-कर्म में समाया हुआ है। अभिवादन और मुलाकाती उच्चारण भी 'राम राम' के शब्दों द्वारा होता है। रामायण पाठ और

रामलीला के माध्यम से राम महिमा घर-घर पहुंचाई जा चुकी है जैसा कि योग गुरु बाबा रामदेव ने वर्तमान में योग को घर-घर पहुंचाया है।

प्रभु रामचन्द्र हमारे अतीत के गौरव, वर्तमान के आश्रय तथा भविष्य की उज्ज्वल आशा हैं।

कबीरजी राम के बारे में कहते हैं : सपने में घबरायके, जिन मुख निकसत राम/तिनके पग की पहिरनी, मेरे तन की चाम।

आज के कवि शिव ओम अम्बर कहते हैं : बिना राम के आदर्शों का, चरमोत्कर्ष कहां है/बिना राम के भारत में भारतवर्ष कहां है?

रामायण विश्व का आदि महाकाव्य है और इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि विश्व के आदि कवि हैं।

श्रीराम के विविध आयामों की भांति भारतीय जीवन और संस्कृति भी महान् और स्तुत्य है। भारतीय संस्कृति में इतना आकर्षण है कि मैक्समूलर, भगिनी निवेदिता, डॉ. एनी बीसेंट जैसी विदेशी विभूतियां भारतीय दर्शन और संस्कृति का अध्ययन करने भारत आए और ता उम्र भारतीय होकर रहे।

शिक्षा मनीषी और बाद में भारत के राष्ट्रपति रहे डॉ. राधाकृष्णन् ने तो अपनी विदेश की यात्राओं में अकसर कहा था—आप समुद्र में मछली की भांति तैर सकते हैं, आकाश में पक्षी की भांति विचरण कर सकते हैं—पर पृथ्वी पर मनुष्य की भांति रहने के लिए अभी भारत से सीखना होगा।

इस एक घटना से भारतीय संस्कृति के बारे में बहुत कुछ सीखा जा सकता है कि जब ओरंगजेब अपने बादशाह पिता शाहजहां को बंदी बना खुद बादशाह बन बैठा था और बंदी प्यासे पिता के पानी-पात्र को ठोकर मारकर गिरा दिया तो उस वक्त अटक-अटक कर उसके पिता ने कहा—

आफरीन बाद हिंदवान सत् बार।
मैं देहंद पिदरे मुर्दोराषा दायम आब।।

(अरे, बेटा! तू एक अद्भुत मुसलमान है! जिंदा बाप को जल नहीं पीने देता। हिन्दूजन को शत बार धन्यवाद, क्योंकि वे मृत पितृ पुरुष को भी तर्पण करके जल देते हैं।)

तमिलनाडु के नास्तिक पेरियर इ.बी. रामास्वामी नायकर (अब दिवंगत) की भी पुस्तक में चर्चा है जिन्होंने एक आम सभा में श्रीराम के चित्र को जलाया। दरअसल उनका विरोध था कि उत्तरी भारत की रामलीलाओं में राष्ट्रपति से प्रधानमंत्री तक राम पात्र का तिलक करते हैं और विद्वान् रावण के पुतले को

जलाते हैं। राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री दक्षिण भारत की रावणलीला में भी यही प्रक्रिया अपनाएं?

किताब में वाल्मीकि, व्यास, श्रीकृष्ण, शंकराचार्य, चाणक्य, विक्रम, गुरु नानक, प्रताप, रहीम, तुलसीदास, दाराशिकोह, जीजा बाई, अहल्या बाई, रसखान, हरिदास, राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, रामतीर्थ, बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री अरविन्द, भगिनी निवेदिता, तिलक, एनी बीसेंट, मालवीय, सुभाष बोस, हेडगेवार, श्री मां, डॉ. राधाकृष्णन्, छागला, वी.वी. गिरि, जयप्रकाश नारायण का भी संक्षिप्त वृत्तांत हैं।

चित्रदीर्घा के विवरण में 37 दुर्लभ चित्र विवरण सहित हैं जो ज्ञानार्जन में वृद्धि करते हैं एवं पुरातन विद्वानों की जानकारी से अवगत कराते हैं।

प्रभु श्रीराम एवं भारतीय जीवन शैली की यह पुस्तक अतुलनीय, पठनीय और संग्रहणीय है तथापि चौपालों, समारोहों एवं आख्यानों में वर्णनीय है। नई पीढ़ी इसे अवश्य पढ़ें।

नारायण सिंह रामावत 'दिलचस्प'

लोकाभिराम श्रीराम का विलक्षण आख्यान

डॉ. हरवंशलाल ओबराय ने भारत राष्ट्र और इसकी आत्मा हिन्दू संस्कृति के पुनर्जागरण में जो अमूल्य योगदान किया उसका समुचित आकलन अभी तक नहीं हो पाया है। राष्ट्र-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत डॉ. ओबराय मौलिक विचारक और हिन्दुत्व का प्रखर स्वाभिमान रखने वाले महामानव थे। उनका अटल विश्वास था कि दो हजार वर्ष पहले तक सम्पूर्ण विश्व में हिन्दू-संस्कृति ही व्याप्त थी—यूरोप, अमरीका, अफ्रीका, एशिया में चहुं-ओर विश्व-विजयी भारतीय संस्कृति का ही प्रभाव था। यह सिद्ध करने के लिए उन्होंने पूरी दुनिया की यात्रा की और दुनिया के कोने-कोने में विद्यमान हिन्दू संस्कृति के पद-चिह्नों को खोजा। ऐसे-ऐसे प्रमाण उन्होंने जुटाये कि सहसा विश्वास नहीं होता कि हमारी संस्कृति ने ऐसी उत्कृष्ट छाप सर्वत्र दूर तक छोड़ी। यूरोप और अमरीका में डॉ. ओबराय को अनेक संस्थानों ने भाषणों के लिए भी आमंत्रित किया। वहां अपने उद्बोधनों में भी अकाट्य तर्कों से यह सिद्ध कर देते थे कि भारतीय संस्कृति ने ही अमरीका, यूरोप आदि का पोषण किया है।

अपने अनुभवों, वक्तृता को उन्होंने लिपि-बद्ध भी किया और यह सब सामग्री डॉ. ओबराय समग्र के पांच खण्डों में उपलब्ध है। ये ग्रंथ पढ़ने के बाद

ही डॉ. हरवंशलाल ओबराय के कार्य की महत्ता ध्यान में आती है। स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने कृपा पूर्वक अमृत-तुल्य इन पांच खण्डों का प्रकाशन किया है। इस विशाल संग्रह को पढ़ने में कुछ जिज्ञासुगण को कठिनाई हो सकती है, यह विचार कर स्वामीजी ने सम्पूर्ण सामग्री को विषयानुसार विभाजित कर पच्चीस पुस्तकें और प्रकाशित की है। जिसमें पांच पुस्तकों में स्वामी सुबोधगिरि सह लेखक है इसके अतिरिक्त पांच पुस्तकें स्वयं सुबोधगिरिजी की है। अध्ययनशील पाठकों के लिए उक्त विशाल संकलन का सांगोपांग अध्ययन अब और भी सुविधाजनक हो गया है। संकलन का अंतिम पुष्प हाल ही में प्रकाशित हुआ है। अन्य पुस्तकों की भांति इसमें स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी के लेख भी समाहित किये गए हैं। इससे इस ग्रंथ की प्रभावोत्पादकता और बढ़ गई है।

'साक्षात् धर्मविग्रह प्रभु श्रीराम और भारतीय जीवन का अखण्ड प्रवाह' नाम का यह ग्रंथ एक प्रकार से भारतीय संस्कृति का लघु स्वरूप ही है। इसके अध्ययन से राष्ट्र, राष्ट्रीयता, संस्कृति, धर्म तथा भारत की श्रेष्ठ परम्परा का पाठक प्रत्यक्ष दर्शन कर सकता है। उक्त सभी अवधारणाओं को यदि ठीक से समझना हो तो उक्त संकलन का अध्ययन यथेष्ट होगा। प्रारम्भ में दिया गया सम्पादकीय स्वामीजी की ओजस्वी लेखनी की एक बानगी है। भारतीय परम्पराओं की उत्कृष्टता, उनके ह्रास का कारण तथा पुनर्जागरण के आधारों का विवेचन पाठकों में पूरा ग्रंथ पढ़ने की उत्सुकता जगा देता है।

पुस्तक प्रभु श्रीराम तथा राम-कथा पर केन्द्रित है अतः प्रारम्भ में श्रीराम की महत्ता प्रकट करने वाले आलेख हैं। प्रत्येक भारतीय का जीवन वस्तुतः, राम-मय है—श्रीराम से प्रारम्भ होता है और श्रीराम के नाम की सत्यता का घोष करते हुए समाप्त होता है। भारतीय जीवनादर्शों का प्रमुख आधार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जीवन और उनके द्वारा स्थापित मर्यादाएं ही है। भारत ही नहीं पूरी दुनिया को श्रीराम के आदर्शों ने अनुप्राणित किया है। अपने देश की एकात्मता का तो आधार राम-कथा है ही, पूरे विश्व की एकात्मता का भी आधार है। दक्षिण एशियाई देशों में तो आज भी श्रीराम ही जीवनाधार बने हुए हैं, पर यूरोप के जन-जीवन पर कभी प्रभु श्रीराम ही छाये हुए थे। सुदूर इटली में श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी के वन-गमन के समय के चित्र मिले हैं। यूनानी महाकवि होमर का महाकाव्य 'इलियड' श्रीराम कथा पर ही आधारित है और महाभारत-कथा के भी कुछ अंश इस महाकाव्य में हैं।

यूरोप के अनेक ख्यातनाम विद्वानों ने श्रीराम और राम-कथा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कई पादरी रामचरितमानस पढ़ने के बाद ईसाइयत के स्थान पर हिन्दुत्व का प्रचार करने लगे। द्वितीय विश्व-युद्ध में जब साम्यवादी रूस भी

शामिल हो गया, उस समय विद्वान् बरान्निकोव रामचरितमानस का रूसी भाषा में अनुवाद कर रहे थे। युद्ध छिड़ते ही जब वे मोर्चे पर जाने को तैयार हुए तो साम्यवादी शासकों ने उन्हें राम-कथा अनुवाद के महत्त्वपूर्ण काम में लगे रहने का निर्देश दिया। यही नहीं, 'युद्ध-भूमि' से दूर एक शान्त और रमणीक स्थान पर बरान्निकोव के रहने की व्यवस्था भी की गई। एक अन्य रूसी महामानव टाल्सटाय को जीवन के जटिल प्रश्नों का उत्तर वेद, उपनिषद्, रामायण और महाभारत से ही मिला।

उक्त सभी तथ्य प्रमाण सहित इस पुस्तक में दिये गए हैं। सात सौ सालों के भीषण संघर्ष के काल में विधर्मी हमलावरों से 'राम-कथा' ने भारतीय संस्कृति को बचाया इसका भी विवेचन किया गया है। भारतीय जीवन के अखण्ड प्रवाह को स्पष्ट करने के उद्देश्य से महर्षि वाल्मीकि और वेद व्यास से लेकर भगिनी निवेदिता, डॉ. हेडगेवार तथा महर्षि अरविन्द तक की महापुरुषों की अखण्ड मालिका के माणिकों का संक्षिप्त परिचय भी इस संकलन में है। सभी जीवन परिचय डॉ. ओबराय लिखित ही हैं। भारत राष्ट्र की चिरकालीनता और अजेयता स्वामीजी ने अपनी लेखनी से स्पष्ट की है। पिछली कुछ शताब्दियों से तथा वर्तमान में भी राष्ट्र-जीवन में जो अवरोध बने हुए हैं उनका भी सुन्दर विश्लेषण किया गया है। तथा-कथित धर्मनिरपेक्षता अर्थात् सेकुलरवाद ने राष्ट्र-जीवन का जो विनाश किया उसका तर्क-संगत विवेचन किया गया है।

विश्व की एकता का आधार राम-कथा को सिद्ध करते हुए अन्यान्य देशों के उन नगरों के नाम भी दिये गये हैं जो राम-नाम पर आधारित हैं—इराक में रामा, रामल्ला, राबन, रामूथा नाम के तो जर्मनी में रामबर्ग, रामबो, रामस्टीन आदि नगर हैं। पूरी दुनिया में श्रीराम, हनुमान, महर्षि अगस्त्य, राम-लीला से सम्बन्धित जो चित्र पाये गये है उनमें से कुछ पुस्तक के अंत में दिये गये हैं। स्वातंत्र्यवीर सावरकर पर एक उत्कृष्ट लेख परिशिष्ट में है। परिशिष्ट में दिये गये चित्रों ने इस संकलन को अनमोल बना दिया है। मुद्रण और साज-सज्जा सदा की तरह उत्कृष्ट है। लगभग साढ़े सात सौ पृष्ठों के नवनीत-रूप इस ग्रंथ का मूल्य मात्र ग्यारह सौ रुपये कुछ भी नहीं है अर्थात् इसकी सामग्री का मूल्यांकन किया ही नहीं जा सकता। प्रकाशन स्थान भीनासर के अतिरिक्त यह अनमोल मोती जयपुर के प्रज्ञा साधना केन्द्र पर और दिल्ली में जागृति प्रकाशन तथा 'इतिहास संकलन-योजना' कार्यालय पर भी उपलब्ध है।

कन्हैयालाल चतुर्वेदी
पूर्व सम्पादक, पाथेय कण
पाथेय कण 16 जनवरी, 2020

सेवा का पुनीत संकल्प

मानव के व्यक्तित्व के तीन वृत्त (दायरे) होते हैं। एक पेट का दायरा, दूसरा परिवार का दायरा और तीसरा समाज का दायरा। लगभग 80 प्रतिशत लोग पेट के दायरे तक ही चिन्ता करते हैं। लगभग 19-20 प्रतिशत परिवार के चार-छः सदस्यों के पालन-पोषण की ही चिन्ता करते हैं। हजारों में कोई एक सज्जन समाज के दायरे की चिन्ता करता है। दुर्भाग्य से हमारे समाज का दायरा विगत एक हजार वर्षों से टूटा हुआ है।

हम ईमानदारी से अपने कलेजे पर हाथ रखकर अपने आप से पूछें कि पिछले चौबीस घंटों में हमने कितना समय पेट के लिए, कितना समय परिवार के लिए और कितना समय समाज के लिए दिया है? इसके उत्तर में हमें स्वयं ही अनुभव हो जाएगा कि हम अपने समस्याग्रस्त, संकटापन्न समाज की कितनी भयंकर उपेक्षा कर रहे हैं। यदि चार-छः दिन पेट की उपेक्षा की जाय तो पेट विद्रोह कर उठेगा, शरीर का बल क्षीण हो जायेगा तथा हम अर्धमृत से हो जायेंगे। यदि दो-चार मास परिवार की सेवा-सुरक्षा पर ध्यान न दिया जाय तो परिवार उजड़ जायेगा। हम तनिक सोचें कि जिस समाज की हमने एक हजार वर्ष तक चिन्ता नहीं की उसकी कैसी दुर्गति हुई होगी। पिछले हजार वर्ष का इतिहास साक्षी है कि सिन्ध के राजा दाहिर की पुत्रियों को बन्दी बनाकर बगदाद ले जाया गया तथा वहाँ उन्हें घोड़े की पूँछ के पीछे बाँध कर बाजारों में घसीट-घसीट कर मारा गया, सहस्रों-पुरुषों को गुलाम बनाकर तथा नारियों को दासी एवं रखेल बनाकर विदेशों में बेचा गया, नन्हे-नन्हे बच्चों को दीवारों में जिन्दा चुन दिया गया, ब्रह्मज्ञानी-सन्तों का चौराहों पर शीर्ष-छेदन हुआ, तपे हुए तवों पर और तेल के कड़ाहों में जलाया गया। वेद-मन्दिरों को ध्वस्त किया गया, कश्मीर के ब्राह्मणों का सामूहिक धर्मान्तरण हुआ, स्वदेश का एक-चौथाई भाग हिंसा एवं रक्तपात द्वारा काट कर परदेस बना दिया गया। इतिहास साक्षी है कि समाज के दुर्बल रहने पर न पेट सुरक्षित रहता है न परिवार। निर्बल समाज की रोटी एवं बेटी दोनों को दुष्ट लोग लूट कर ले जाते हैं।

हरिजन एवं वनवासी बन्धुओं को त्रिविध मार का शिकार बनना पड़ा है। एक तो निर्धन और अशिक्षित रहने के कारण वे पहले से ही पिछड़े हुए थे। दूसरे, विदेशियों का प्रहार सबसे अधिक उन्हीं पर हुआ। तीसरे वे हमारा स्नेह एवं सहयोग भी नहीं प्राप्त कर सके। वास्तव में यह तीसरा कारण ही सबसे प्रमुख कारण है। हमारी उपेक्षा से ही वे अशिक्षित एवं निर्धन बने रहे तथा हमारी सामाजिक उपेक्षा के महापाप के कारण ही वे विदेशी शक्तियों के अत्याचार का शिकार बनते रहे।

आज अपने युगों की उपेक्षा के महापाप को हमें धोना है। लम्बे तिरस्कार की ब्याज सहित क्षतिपूर्ति आज अपनी भरपूर सेवा द्वारा करनी है। समाज बचेगा तो हमारा पेट भी बचेगा और परिवार भी। यदि समाज सबल होगा तो न कोई हमारे पेट पर लात मार सकेगा, न परिवार की मान-मर्यादा लूट सकेगा तथा न हमारी श्रद्धा का खून होगा।

आइये, हम समाजसेवा का पवित्र संकल्प धारण करें।